॥ श्रीः ॥

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा और पञ्जाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी भूषण परीक्षा के लिये पाठ्य पुस्तक।

अलंकार प्रबोध।

परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण।

सम्पादक

अध्यापक रामरत्न

चन्द्रहंस शर्मा विशारद।

प्रकाशक

रत्नाश्रम—आगरा

॥ श्रीः ॥

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा और पञ्जाब यूनिवर्सिटी की हिन्दी भूषण परीक्षा के लिये पाठ्य पुस्तक।

अलंकार प्रबोध।

परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण।

सम्पादक

अध्यापक रामरत्न

पं० चन्द्रहंस शर्मा विशारद।

प्रकाशक

रत्नाश्रम—आगरा

द्वितीयावृत्ति
२००० प्रति

मूल्य ॥=)

पं० राजनाथ शर्मा द्वारा कौरोनेशन प्रेस, शीतलागली आगरा में मुद्रित।

अर्थ-शक्ति	१
अभिधा	१
लक्षणा	२
व्यञ्जना	२
रस और भाव	३
विभाव	४
आलंबन	४
उद्दीपन	४
अनुभाव	५
काव्य का लक्षण	५
अलंकार	५
शब्दालंकार	६
अनुप्रास	६
छेकानुप्रास	६
वृत्ति	७
उपनागरिका	८
परुषा	९
कोमला	९
लाटानुप्रास	९
श्रुत्यनुप्रास	१०
अन्त्यानुप्रास	११
यमक	१२
श्लेष	१४
वीप्सा	१५
प्रहेलिका	१६
पुनरुक्ति प्रकाश	१६
वक्रोक्ति	१७
पुनरुक्तवदाभास	१८
चित्रकाव्य	१९
अर्थालंकार	१९
उपमा	१९
पूर्णोपमा	२०
लुप्तोपमा	२१
मालोपमा	२४
रसनोपमा	२५
उपमेयोपमा	२६
अनन्वय	२६
ललितोपमा	२७
प्रतीप	२७
प्रथम	२७
द्वितीय	२८
तृतीय	२८
चतुर्थ	२९
पंचम	३०
रूपक	३०
अभेदरूपक	३१
सम	३१
सावयव	३१
निरवयव	३३
परंपरित	३४

अधिक	३५
न्यून	३६
ताद्रूपक	३६
परिणाम	३७
उल्लेख	३८
प्रथम उल्लेख	३८
द्वितीय ,,	३६
अतिशयोक्ति	३६
रूपकातिशयोक्ति	३६
भेदकातिशयोक्ति	४०
सम्बन्धातिशयोक्ति	४१
असम्बन्धातिशयोक्ति	४२
अक्रमातिशयोक्ति	४३
चपलातिशयोक्ति	४३
अत्यन्तातिशयोक्ति	४४
सापह्नवातिशयोक्ति	४५
उत्प्रेक्षा	४५
वस्तूत्प्रेक्षा	४५
हेतूत्प्रेक्षा	४७
फलोत्प्रेक्षा	४८
सापह्नवोत्प्रेक्षा	४६
व्याजस्तुति	५०
स्मरण	५२
भ्रम	५२
सन्देह	५३
अपह्नुति	५४
शुद्धापह्नुति	५४
कैतवापह्नुति	५४
हेतु	५५
पर्यस्ता	५५
भ्रान्त	५६
छेका	५६
दीपक	५७
मालादीपक	५८
कारकदीपक	५८
आवृत्तिदीपक	५६
प्रतिवस्तूपमा	६०
दृष्टान्त	६१
निदर्शना	६२
प्रथम	६२
द्वितीय	६२
तृतीय	६३
सहोक्ति	६४
विनोक्ति	६४
समासोक्ति	६५
व्यतिरेक	६६
परिकर	६७
परिकराङ्कुर	६८
श्लेष	६८
अप्रस्तुत प्रशंसा	६६
कारणनिबन्धना	६६

कार्यनिबन्धना	७०	तृतीय	८५
सारूप्य निबन्धना	७१	विषम	८५
विशेष ,,	७२	सम	८६
सामान्य ,,	७३	विचित्र	८८
प्रस्तुताङ्कुर	७३	प्रहर्षण	८९
विरोधाभास	७४	विषाद	९०
पर्यायोक्ति	७६	अधिक	९१
प्रथम	७६	अल्प	९१
द्वितीय	७७	अन्योन्य	९२
आक्षेप	७७	कारणमाला	९३
प्रथम	७७	एकावली	९४
द्वितीय	७८	व्याघात	९५
तृतीय	७८	सार	९६
विभावना	७९	यथासंख्य	९८
प्रथम	७९	पर्य्याय	९९
द्वितीय	७९	परिवृत्त	१००
तृतीय	८०	परिसंख्या	१०१
चतुर्थ	८०	विकल्प	१०२
पञ्चम	८१	प्रौढोक्ति	१०२
षष्टम्	८१	सम्भावना	१०३
विशेषोक्ति	८२	विकस्वर	१०४
असम्भव	८२	मिथ्याध्यवसिति	१०५
असङ्गति	८३	तुल्य-योगिता	१०६
प्रथम	८३	समुच्चय	१०७
द्वितीय	८३	समाधि	१०९
		प्रत्यनीक	११०
		ललित	११०

अर्थान्तरन्यास	१११
काव्यार्थापत्ति	११२
काव्यलिङ्ग	११३
उल्लास	११४
तिरस्कार	११५
अवज्ञा	११५
अनुज्ञा	११६
लेश	११७
मुद्रा	११८
रत्नावली	११९
तद्गुण	१२०
अतद्गुण	१२१
पूर्वरूप	१२१
प्रथम	१२१
द्वितीय	१२२
अनुगुण	१२२
मीलित	१२३
उन्मीलित	१२४
सामान्य	१२४
विशेषक	१२५
गूढ़ोत्तर	१२६
चित्र	१२६
सूक्ष्म	१२७
पिहित	१२८
व्याजोक्ति	१२९
गूढोक्ति	१२९
विवृतोक्ति	१३०
युक्ति	१३०
लोकोक्ति	१३१
छेकोक्ति	१३२
स्वभावोक्ति	१३३
भाविक	१३४
उदात्त	१३४
अत्युक्ति	१३५
निरुक्ति	१३६
प्रतिषेध	१३७
विधि	१३७
हेतु	१३८

अलंकार प्रबोध

काव्य क्या है ?

विद्वानों ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" रस से पूर्ण वाक्य का नाम काव्य कहा है।

वाक्य *–शब्दों के उस संगठन को कहते हैं जिसमें कर्त्ता और क्रियादि यथा स्थान में रहकर किसी अर्थ को पूरा करें।

अभिधा।

शब्दों में तीन प्रकार की शक्ति है, उन्हीं शक्तियों के द्वारा पद वा वाक्य आदि का अर्थ जाना जाता है; प्रथम अभिधा, दूसरी लक्षणा और तीसरी व्यंजना है। जिस शक्ति से शब्दों का मुख्य (सीधा सादा) अर्थ जाना जाता है, उसको अभिधा कहते हैं। अभिधा द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो उसे वाच्यार्थ कहते हैं।

अभिधान वा व्याकरणादि शास्त्र उक्त वाच्यार्थ-बोध के प्रधान सहायक हैं; जैसे–पंकज कहने से जल से उत्पन्न पुष्प-लता विशेष के अर्थ का ज्ञान होता है; यही अर्थ पंकज शब्द का वाच्यार्थ वा शब्दार्थ है। शब्द मात्र में ही इस प्रकार का वाच्यार्थ वा शब्दार्थ होता है।

---

* वाक्यों के भेद तथा शब्दों की रीति का संगठनादि जानने के लिये "वाक्य-विश्लेषण" नाम की पुस्तक देखिये।

लक्षणा ।

जहां शब्दों का सीधासादा अर्थ न लगाकर, प्रयोजन की रूढ़ि के कारण कोई निकट सम्बन्ध रखने वाला, दूसरा अर्थ लिया जाय वहां लक्षणा होती है। लक्षणा के द्वारा जो अर्थ जाना जाय वह लक्ष्यार्थ कहलाता है; जैसे-गंगावासी पद में गंगा पद का वाच्यार्थ जल-प्रवाह है, उसमें वास करना असंभव है; इसलिये गंगातीर वासी अर्थ होगा। जिस लक्षणा द्वारा वाच्यार्थ का विपरीत अर्थ समझा जाय उसे 'विपरीत लक्षणा' कहेंगे; जैसे-किसी क्षीण-काय-व्यक्ति को देख कर कहा जाय कि, कितना मोटा आदमी है।

व्यंजना ।

वाच्यार्थ वा लक्ष्यार्थ को छोड़ कर जिसके द्वारा एक और अर्थ जाना जाय उसे व्यञ्जना कहते हैं-व्यञ्जना द्वारा जो अर्थ घटित होता है, व्यंगार्थ कहलाता है; जैसे—

गेंद खेलने में किसी खिलाड़ी ने कहा, अब तो अँधेरा होगया, इस का अर्थ यह है कि, खेल बन्द कर देना चाहिये।

सुनने वालों की पृथक्ता के कारण एक वाक्य के कई व्यंगार्थ हो सकते हैं। किसी ने कहा,-५ बज गये,-पंडित गण समझेंगे, संध्या का समय हुआ; किसान समझेगा, हल लेकर चलना चाहिये; यात्री समझेगा, चलने का समय हुआ; ६ बजे स्कूल में पहुँचने वाला विद्यार्थी समझेगा, स्कूल जाने का समय हुआ, आदि २।

रस और भाव

सुनि कवित्त को चित्त मधि, सुधि न रहे कछु और।
होय मगन वहि मोद में सो "रस" कहि शिरमौर॥
जब विभाव, अनुभाव अरु व्याभिचारी मिलि आनि।
पारिपूरण व्यापी जहां, उपजै सो "रस" जानि॥

रस पैदा होने का हेतु भाव है, भाव दो प्रकार के होते हैं-स्थायी और संचारी (व्यभिचारी)।

स्थायी भावों का अस्तित्त्व मनुष्य के चित्त में हर समय मौजूद रहता है। रस की अनुकूलता पाकर उनका विकास होता है। स्थायी भाव ९ हैं:—

रति, हँसी, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य्य और निर्वेद। रत्यादिक भावों के कारणों को विभाव और कार्यों को अनुभाव कहते हैं। संचारी भाव इनके सहायक हो सकते हैं। संचारी भाव दो प्रकार के होते हैं:—

तन संचारी (सात्विक) और मन संचारी।

सुख दुख आदिक भावना हृदै माँहि जो होय।
सो विन वस्तु न परगटै सात्विक कहिये सोय॥

सात्विक भाव ८ प्रकार के होते हैं जिनके अर्थ नाम से ही प्रगट हैं।

यथा:—१ स्वेद, २ स्तंभ, ३ रोमांच, ४ स्वरभंग, ५ कम्प, ६ विवरण ७ आंसू और ८ प्रलय। (बेहोशी)

तन व्यभिचारी भाव स्थायी भावों को प्रगट करते हैं किन्तु मन-संचारी-भाव स्थायी भावों से इस प्रकार प्रगट होते हैं

जिस प्रकार नदी में तरंग प्रगट होती हैं। निर्वेदादि ३३ भाव मन-संचारी हैं। स्थायी भावों में भी निर्वेद का वर्णन कर चुके हैं किन्तुः—

तत्व ज्ञान बिरहादि ते जहँ जग को अपमान।
और निदरिबो आपनो सो 'निर्वेद' बखान॥
निज रस पूरण होनलों 'थाई' जानि उदोत।
गये रौद्र रस में वहै 'व्याभिचारी' पुनि होत॥

इस प्रकार—१ निर्वेद २ ग्लानि ३ दीनता ४ शंका ५ त्रास ६ आवेग ७ गर्व ८ असूया ९ कोप (अमर्ष) १० उग्रता ११ उत्सुकता १२ स्मृति १३ चिन्ता १४ तर्क (संशयात्मकतर्क, विचारात्मकतर्क) १५ मति १६ प्रीति १७ हर्ष १८ व्रीड़ा १९ अवहित्था (कुटिलता) ३३ चपलता २० श्रम २१ निद्रा २२ स्वप्न २३ आलस्य २४ वैपथ २५ मद २६ मोह २७ उन्माद २८ अपस्मार २९ जड़ता ३० विषाद ३१ व्याधि ३२ मरण ३३ धृति।

विभाव दो प्रकार का होता है—आलम्बन और उद्दीपन।

१. आलम्बन—जिसके सहारे से रस उत्पन्न होता है; जैसे श्रृङ्गार में नायक नायिका।

२. उद्दीपन—जिससे रस प्रदीप्त होता है; जैसे श्रृङ्गार में श्रृङ्गारिक भाव बढ़ाने वाली प्रकृति की अनुकूलता।

अनुभाव।

जिनसे रति, हँसी, शोक, क्रोध, उत्साह आदि का अनुभव होता है, वह उसी रस के अनुभाव कहलाते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक स्थायी भाव, विभाव के सहारे उत्पन्न और पोषित होकर अनुभाव रूपी वृक्ष बनता है। फिर संचारी, फूल के समान क्षण क्षण फूलकर इन सब के संयोग से मकरंद रूप रस बनता है, जोकि मधुप रूपी कवियों का जीवनाधार होता है।

प्रत्येक रस के आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव आदि का पूरा विवरण जानने के लिये कोई बड़ा रस ग्रंथ अथवा हमारा रस प्रबोध देखना चाहिये। यही रस जब गद्य तथा पद्यादिक वाक्य में होता है तो काव्य का लक्षण घटित हो जाता है।

काव्य तीन प्रकार का होता है।

जहाँ वाच्य से व्यंग में अधिक चमत्कार हो, वह 'ध्वनि' और जहां व्यंग से वाच्य में अधिक वा समान चमत्कार हो वहां गुणीभूतव्यंग, और जहाँ पर व्यंग का कुछ प्रभाव न हो केवल शब्द और अर्थ सम्बन्धी चमत्कार हो वह 'आलंकारिक-काव्य' कहलाता है।

अलंकार।

(इस गद्य और पद्य में शब्द और अर्थ सम्बन्धी कोई चमत्कार जिस से उत्पन्न हो उसे 'अलंकार' कहते हैं) जिस प्रकार कंकण, हार आदि आभूषण किसी सुन्दरी की स्वाभाविक सुन्दरता को कई गुना बढ़ा देते हैं, उसी प्रकार काव्य सुन्दरी के भाव रूपी सौन्दर्य को बढ़ाने में अलंकार

(आभूषण) सर्वथा समर्थ हैं। परन्तु जिस प्रकार आभूषण सुन्दरी के शरीर पर सदैव नहीं रहते हैं उसी प्रकार अलंकार भी काव्य शरीर पर सर्वथा देखने में नहीं आते। अलंकार तीन प्रकार के होते हैं:—शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

शब्दालंकार।

जिस काव्य में कुछ शब्दसम्बन्धी चमत्कार हो अर्थात् जिस अर्थ वाला शब्द किसी में आया हो उसकी जगह उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द आने से वह चमत्कार न रहे उसे 'शब्दालंकार' कहते हैं, जैसे—

बादर बुझावत हैं बीजुरी की आगि नाहिं,
बीजुरी न मारे बजमारे बदरान कों।

इसमें 'ब' अक्षर के कई बार आने से एक विचित्र शब्द-सौंदर्य्य पैदा होता है।

शब्दालंकार के कई भेद हैं:—

अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र, पुनरुक्तिवदाभास, पुनरुक्ति, वीप्सा, प्रहेलिका

अनुप्रास के भेदः—छेक, वृत्ति, लाट, श्रुति और अन्त्य।

* छेकानुप्रास,—जहाँ स्वर रहित व्यञ्जनों का एक बार सादृश्य हो वहां 'छेकानुप्रास' होता है; जैसेः—

---

*आवृत्ति वरण अनेक की दोय दोय जब होय।
है 'छेकानुप्रास' सो समता बिनहु सोय ॥ (भाषा भूषण)

"रसवती रसना करके कहीं,
कथित थी कथनीय-गुणावली।
मधुर-राग सधे स्वर ताल में,
कलित-कीर्ति अलापित थी कहीं" ॥

यहां पहले पाद में स और क, दूसरे में क, तीसरे में स, चौथे में क, दो २ बार आये हैं।

सरल स्वभाव राम महतारी, बोली बचन धीर धरि भारी।

इस पद्य में 'सरल स्वभाव' में 'स' 'राम और महतारी' और में 'म' बोली वचन में 'व' तथा 'धीर और धारी' में 'ध' एक बार सादृश्य है।

राम-राज्य-अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर नारि।

में छेकानुप्रास की झलक है।

*वृत्ति—जब एक ही अथवा कई वर्णों का कई बार सादृश्य हो तो उसे "वृत्त्यनुप्रास" कहते हैं; जैसे—

अब अप्रिय हुआ है क्यों उसे भौन आना!
प्रति दिन जिसकी ही ओर आंखें लगी हैं॥
पगहित जिसके मैं नित्य ही हूं बिछाती।
पुलकित पलकों के पाँवड़े प्यार द्वारा॥

यहां अंतिम पाद में 'प' का सादृश्य कई बार हुआ है।

---

*एक हि या बहु वरण की समता सहज सहाय।
अनुप्रास वृत्ती वही कहत सकल कविराय॥ (काव्य प्रभाकर)

वृत्ति ३ प्रकार की होती है:—उपनागरिका, परुषा और कोमला। जिसमें टवर्ग को छोड़कर कवर्ग से पवर्ग तक अथवा इन्हीं वर्गों के पंचम वर्णयुक्त जो वर्ण हों वह माधुर्य्य-गुण प्रकाशक कहलाते हैं। इनमें से कई अक्षरों का कई बार सादृश्य हो वहां उपनागरिका वृत्ति होती है। जिसमें टवर्ग के सब वर्ण तथा श, ष और वर्ग के पहले तीसरे व दूसरे चौथे वर्णों के संयोग हों वह ओज प्रकाशक वर्ण कहलाते हैं। ओज-प्रकाशक-वर्णों की समता में 'परुषावृत्ति' होती है। ओज और माधुर्य्य प्रकाशक वर्णों के अतिरिक्त जहां अन्य वर्णों की वृत्ति हो उसे कोमला-वृत्ति कहते हैं। कहीं २ एक ही पद्य में दो वा तीनों वृत्ति आजाती हैं; जैसे—

उपनागरिका—

प्रिय पावन पावस लहरि लह लहात चहुँ ओर।
छाई छवि छितिप छहरि ताको ओर न छोर॥
चातक चालि कोयल ललित बोलत मधुरे बोल।
कूकि कूकि केकी कलित कुंजन करत कलोल॥

इन पद्यों में 'प' 'छ' और 'क' की आवृत्ति से 'उपनागरिका वृत्ति है और 'ल' की आवृत्ति से कोमला का प्रभाव है।

उपनागरिका, कोमला, परुषावृत्ति सु तीन।
फिरि २ अक्षर होय जहँ समता वृत्ति अधीन॥ (कविकुल कण्ठाभरण)

प्रति अक्षर आवृत्ति कहु वृत्ति तीन विधिमान।
मधुर वचन जामें बसें उपनागरिका जान॥ (भाषा भूषण)

परुषा—

मर्कट विकट भट जुटत सम्मुख लरत तनु जर जर भये।

इस पद्य में 'ट' का कई बार सादृश्य होने से परुषावृत्ति है।

जहाँ रुँडन पै रुंड मुंड झुंडनि के झुंड कटैं कोटिन वितुंड जनु बन्धुकी समान।

तहाँ सेवक दिसान भीम रुद्र के समान हरि शंकर सुजान मुकिझारी किरवान॥

इसी प्रकार इस छंद में 'परुषावृत्ति' है।

कोमला—

विरति विवेक विनय विज्ञाना, बोध यथारथ वेद पुराना।

इस पद्य में 'व' की आवृत्ति से 'कोमला वृत्ति' है।

लाटानुप्रास—

एक से पद वा पद-समूह वा वाक्य एक ही अर्थ में अन्वय की पृथक्ता से दो या कई बार आवें अर्थात् शब्द और अर्थ में भेद न हो केवल तात्पर्य्य में भेद हो, उसे 'लाटानुप्रास'

दूजे परुषा कहत सब जामें बहुत समास।
बिनु समास ह्व मधुरता कहैं कोमलोल्लास॥ (भाषा भूषण)

लाटानुप्रास और यमक का भेद—लाटानुप्रास में जिन पदों वा पद-खण्डों की आवृत्ति होती है वह एक ही अर्थ वाले होते हैं। केवल भाव में भेद होता है। यमक में भिन्न २ अर्थ या बिना अर्थ वाले होते हैं। अनुप्रास में केवल वर्णों की आवृत्ति होती है और यमक में यहाँ स्वर और व्यंजन दोनों की आवृत्ति होती है अतः यमकालंकार दोनों से भिन्न हुआ।

कहते हैं। यथा "करि करुणा करुणायतन" में करुणा पद में 'लाटानुप्रास' है।

लाट के भी पदों की आवृत्ति तथा वाक्य की आवृत्ति से कई भेद हैं।

वाक्य में—

पूत कपूत तो क्यों धन संचय।
पूत सपूत तो क्यों धन संचय॥

औरन के जाँचे कहा जिन जाँच्यो शिवराज।
औरन के जाँचे कहा जु न जाँच्यो शिवराज॥
तीरथ व्रत साधन कहा जो निशिदिन हरिगान।
तीरथ वृत साधन कहा विनु निशिदिन हरिगान॥

पद में—

उड़ि गुलाल की लाल धुधरि में झलकै वेणा भाल।
सखीलाल और लाल विहारिन रासिक विहारीलाल॥

*श्रुत्यनुप्रास

जहां तालुकण्ठ इत्यादि से उच्चारित होने वाले व्यञ्जनों (अर्थात् एक स्थानोत्पन्न) वर्णों की समता पाई जावे उसे 'श्रुत्यनुप्रास' कहते हैं।

जयति द्वारकाधीश जय जय सन्तन-सन्ताप हर।

में द स न त इत्यादि दन्त्य अक्षर हैं।

तोहि निशि में सीता पहँ जाई, त्रिजटा कहि सब कथा बुझाई।

---

*जहां तालु कण्ठादि की व्यंजन समता जोग।
सोई श्रुत्यनुप्रास है कहत सुघर कवि लोग॥

इस पद्य में त न स तथा त्र स क दन्त्याक्षर हैं अतः श्रुत्यनुप्रास हुआ ।

'उभय भांति देखा निज मरना ।'

में उ, भ, म ओष्ठ्य हैं तथा द न न दन्त्य हैं ।

अन्त्यानुप्रास—

प्रत्येक छंद के चरणों के अन्त्याक्षर को तुकान्त कहते हैं। इसी अन्त्याक्षर का नाम अन्त्यानुप्रास है। भाषा में तुकान्त्य पद्य के छः भेद किये गये हैं ।

(१) सर्वान्त्य—चारों चरणों के अंत्य अक्षर एक हों; जैसे सवैया में ।

(२) समान्त्य, विषमान्त्य—जिनके सम से सम तथा विषम से विषम मिलते हों; जैसेः—

जेहि सुमिरन सिधि होय गन नायक करिवर वदन ।
करहु अनुग्रह सोय बुद्धि रासि शुभ गुन सदन ॥

(३) समान्त्य-जिनके केवल समान्त्य मिलते हों; (जैसे दोहा में)

(४) विषमान्त्य-जिनका पहिले और तीसरे पद का अन्त्य मिले; (जैसे सोरठा में)

(५) सम विषमान्त्य-जिसका पहिले दूसरे पद का अन्त्य मिले तथा तीसरे चौथे पद का अन्त्य मिले। (दो चौपाई)

(६) अतुकान्त-कोई चरणान्त्य न मिले ।

व्यञ्जन स्वर गुन एक से जो पदान्त में होय ।
सो अन्त्यानुप्रास है अरु तुकान्त सो होय ॥

यमक

भिन्न २ अर्थ वाले अथवा विना अर्थ वाले सुनने में एक से पद-खंड, पद वा पद-समूह दो वा कई बार आवें तो, 'यमकालंकार' होता है; जैसे—

"बन्दत अनन्द कंद कीरत अमंद चन्द
दरन कुफंद बन्द घायक कुमति के ।
सिद्ध बुद्धिदायक विनायक सकल लोक
सोहैं सब लायक ज्यों दायक सुमति के ।
कोमल अमल अति अरुन सरोज ओज
लज्जित मनोज बरदानि शुभ गति के ।
विघन हरन मुद मंगल करनहार
असरन सरन चरन गनपति के ।"

पहले पाद में 'अन्द' की आवृति, दूसरे पाद में 'यक' की आवृत्ति, तीसरे में 'मल' की और चौथ पाद में 'रन' की आवृत्ति से यमकालंकार है ।

और भी--

१—मानसरोवर आपने, मानस[१] मानस[२] चाहि ।
मानस[३] हरि के मीत को, मानस[४] बरने ताहि ॥
२—सारंग[५] ने सारंग[६] गह्यो, सारंग[७] बोल्यो आय ।
जो सारंग[८] मुख ते कहे, सारंग[९] निकस्यो जाय ॥

---

१ मनको २ मनसे ३ मान सहित ४ मनुष्य ५ मोर ६ सांप ७ बादल ८ मोर ९ सांप

३—सारंग[१०] हित सारंग[११] तट सजनी भूलि न कबहू जैहै।

४ कवित्त—ऊँचे घोर मन्दर[१२] के अन्दर रहन वारी ऊँचे घोर मन्दर[१३] के अन्दर रहाती हैं ॥ कन्दमूल[१४] भोग करें कन्दमूल[१५] भोग करें तीन बेर[१६] खाती सो तो तीन[१७] बेर खाती हैं।[१८] भूषन शिथिल अंग[१९] भूषन शिथिल अंग बिजन[२०] डुलाती तेतौ बिजन[२१] डुलाती हैं। भूषण भनत शिवराज बीर तेरे त्रास, नगन[२२] जड़ाती वे तौ नगन[२३] जड़ाती हैं!

५ कवित्त—आनन[१] की उपमाको[२] आनन को चाहे, तऊ आन न मिलेगी चतुरानन[३] विचारे को। कुसम-कमान[४] के कमान को गुनान गयो करि अनुमान भौंह रूप अति प्यारे को। गिरधर दास दोऊ देखि नैन-बारिजात[५] बारिजात[६] बारिजात[७] मानसरवारे को। राधिका को रूप देखि रति को लजात रूप जातरूप[८] जातरूप[९] जातरूप[१०] वारे को"

पहली कड़ी में आनन की दूसरी में मान की तीसरी में बारिजात चौथा में जात रूप की आवृत्ति से चारों पादों में "यमकालंकार" है।

---

१० कमल फूल ११ सरोवर १२ घर १३ पहाड़ १४ मिष्ठान्न १५ जड़ १६ तीन बार १७ तीन बेर (फल) १८ गहने १९ भूखों से २० पंखा २१ निर्जन वन २२ नगों से शोभित होती थीं २३ उघारी जाड़ा खाती हैं।

१ मुंह २ और मुंह ३ और ४ कामदेव ५ कमल से नैन ६ जल जाता है। ७ कमल ८ सोने से रूप वाले की ९ स्वर्णकान्ति १० नष्ट होजाती है।

श्लेष।

जहाँ एक ही पद वा पद-समूह के दो या अधिक अर्थ निकलते हों वहां श्लेष शब्दालंकार होता है।

इसके मुख्यतर दो भेद होते हैं-शब्दश्लेष और अर्थ श्लेष-कवि का जब अनेक अर्थों में से एक मुख्य अर्थ से तात्पर्य होता है तो शब्दालंकार होता है। परन्तु जहां अनेक अर्थ लक्ष्य हों, वहां अर्थालंकार होता है; जैसे—

"बल प्रताप बीरता बड़ाई, नाक पिनाकहिं संग सिधाई" ॥

यहां 'नाक' पद के दो अर्थ हैं; नाक और लज्जा।

"शेष अमरेश औ गनेश पार पावे नाहिं,
जाके पद देखि देखि आनँद लियो करें।
अक्षर है मूल फेरि व्यक्त औ अव्यक्त भेद,
ताही के सहाय सब उपमा दियो करें।
अव्यय है संज्ञा तीनों काल में अमोघ क्रिया,
वाके रस लीन होय पीयूष पियो करें।
रचना रचावे तिहि भाँति सों मुरारीदास,
ऐसे शब्द ईश्वर को मनन कियो करें"।

इसके दो अर्थ लक्ष्य हैं—एक ईश्वर पक्ष में दूसरा शब्दशास्त्र पक्ष में—

ईश्वर पक्ष में—शेषादिक ईश्वर के पदों (चरणों) को देख कर आनन्द प्राप्त करते हैं, अविनाशी है, साकार निराकार हैं, सम्पूर्ण उपमानों का उपमेय है, उसकी संज्ञा (नाम) अव्यय (न बीतने वाला) है तीनों कालों में है। उसकी

क्रिया अमोघ (अव्यर्थ) है। भक्त प्रेमामृत पीते हैं, भाँति भाँति की रचना (सृष्टि) रचता है। योगी शब्देश्वर (भगवान्) का ध्यान करते हैं।

शब्द शास्त्रपक्ष में-शेषादि पार नहीं पाते (अगम्य है) पदों को देखकर आनंद पाते हैं। अक्षर जिसकी मूल हैं, बाह्य और भीतरी दो प्रकार के अर्थ रखने वाला, जिसके लिये सब उपमा दी जाती हैं, अव्यय, संज्ञा काल क्रिया से युक्त, पंडितगण नव रसामृत पिया करते हैं, अनेक प्रकार की गद्य पद्यात्मक रचना का कारण है, ऐसे शब्द-शास्त्र को भाषा-प्रेमी मनन किया करते हैं।

बहुरि सक्रसम बिनवों तेही, संतन सुरानीक हित नेही।

यहां सुरानीक में श्लेष है देव पक्ष में सुर + अनीक और खल पक्ष में सुरा + नीक ऐसे श्लेष जिनके खंड करके अर्थ लिया जाय सभंग हैं।

वीप्सालंकार।

जहां आश्चर्य्य, घृणा, आदर आदि आकस्मिक भाव प्रगट करने के हेतु एक शब्द कई बार कहा जाय।

आश्चर्य्य—*राम ! राम !! यह क्य नई बात है।*

घृणा—*राम ! राम !! ऐसा न करो !!!*

आदर—*राम कहि, राम कहि, सार है यही।*

ताकीद—*राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे !*

भय—*त्राहि त्राहि कहि आगे काके पांय परते।*

प्रहेलिका ।

कुछ परिवर्तन करने से या योंही उसी प्रश्न में से उत्तर निकले उसे प्रहेलिका कहते हैं।

१—बारे से वह सबको भावे । बढ़ा हुआ कुछ काम न आवे ।
मैं कह दिया उसका नाम। अर्थ करो कै छांड़ो गाम । (दीया)
२—चहुंओर फिर आई । जिन देखी तिन खाई । (खाई)

पुनरुक्ति प्रकाश।

अर्थ की रोचकता अधिक करने के लिये कहीं २ एक ही शब्द का कई बार कथन हो वही पुनरुक्ति प्रकाश होता है।

दाढ़ी ही पर वहि वहि आवत कवौ तमाखू जो फाकन (प्र० ना० मिश्र)

यहां वहि २ दो बार आया है ।

१—"रीझि रीझि तेरे पद छवि पै तिलोचन के
लोचन ये अम्ब धारें केतिक धरानि को"

२—"घनश्याम प्रभा लखि के सजनी
आखियां सुख पाइ हैं पाइ हैं पाइ हैं ।"

३—प्रात भये सब भूप बनि बनि मण्डप में गये
जहां रूप अनरूप ठौर ठौर सब शोभिजे

यहाँ रीझि रीझि में, पाइये पाइये में, बनि बनि में और ठौर ठौर में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

वक्रोक्ति ।

कोई मनुष्य किसी बात को और मतलब से कहे परन्तु सुनने वाला कोई और ही अर्थ लगावे तब वक्रोक्ति अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं:—श्लेष वक्रोक्ति (शब्दों के अर्थ भेद से) और काकु वक्रोक्ति (ध्वनि भेद से)

कहे हुए पद के टुकड़े करके वा योंही दूसरा अर्थ निकाल लिया जाय, वहाँ श्लेष वक्रोक्ति होती है; जैसे—

"को तुमहो ? इत आये कहाँ ? "घनश्याम" हो तो कितहूँ बरसो ।
'चित चोर' कहावत हैं हमतो, तहां जाहु जहां धन है सरसो" ॥

राधा प्रश्न करती हैं 'दरवाज़े पर कौन है' ? 'घनश्याम', 'तो कहीं बरसा करो' ? यहां श्लेष से घनश्याम के दो अर्थ हैं; काले बादल और कृष्ण; आदि २

काकु वक्रोक्ति में केवल बोलने की ध्वनि से दूसरा अर्थ कर लिया जाता है:—

"गने जात हो साँवरे सब साधुन में साधु ।
सौंहैं सौंहैं खात कस तुम न कियो अपराधु ॥"

भाव यह स्पष्ट होता है कि तुम साधु नहीं हो।

"मैं सुकुमारि ! नाथ बन योगू !
तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू !"

श्लेषहि कै काकुसों और अरथ के माहिं ।
कलपन कीन्हें होत है वक्रोक्ति ही ठाहिं ॥

पुनरुक्तवदाभास

देखने में एक से अर्थ वाले भिन्न पद—पर वास्तव में एक अर्थ न हो--दो या अधिक बार आवें तो वहाँ यह अलंकार होता है:--

"अरिन के दल सैन संगर में सामुहाने,
टूक टूक सकल कै डारे घमसान हैं।
बार बार रूरौ महानद परबाह पूरौ,
बहत हैं हाथिन के मद जल दान में।
भूखन भनत महाबाहु भोंसला भुआल,
सूर रवि को सो तेज तीखन कृपान में।
माल मकरन्द जू के नन्द कला निधि तेरो,
सरजाशिवाजी जस जगत जहान में॥"

देखने में दल और सैन, सूर और रवि तथा जगत और जहान एक से अर्थ वाले हैं, पर यहाँ सैन का अर्थ सयन, सूर का अर्थ योधा और जगत का अर्थ जागता है; अतः पुनरुक्तवदाभास है।

चित्र काव्य

इसमें पदों के एक विशेष प्रकार से स्थापित करने से कामधेनु, खड्गबंध, कमलबंध और छत्रबंध आदि अनेक चित्र बनते हैं।

अर्थालंकार।

जहाँ पर शाब्दिक चमत्कार न हो वरन् अर्थ सम्बंधी चमत्कार अर्थात् एक पद निकाल कर उसी अर्थ वाला दूसरा पद रखने पर भी चमत्कार रहे, वहाँ "अर्थालंकार" होता है।

अर्थालंकारों में उपमा प्रधान अलंकार है और अन्य कई अलंकारों का कारण भी है अतः प्रथम उसी का वर्णन करते हैं:-

उपमा।

एक से धर्म, स्वभाव, शोभा तथा दशा वाले दो पदार्थों की तुलना की जाती है, वहाँ उपमालंकार होता है। उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं। उपमेय जिसको किसी अन्य लोक प्रसिद्ध वस्तु से समता देते हैं; 'उपमान' जिस वस्तु से उपमेय को समता दी जाती है; जो उपमान और उपमेय दोनों में एकसा गुण हो वह दोनों का 'सामान्य धर्म' कहलाता है; जिस "समान" आदि शब्द से समता के भाव का भान हो उसे 'उपमा वाचक' शब्द कहते हैं।

जैसे—घोड़ा विजली के समान तेज चलता है, यहाँ पर घोड़ा उपमेय है क्योंकि उसका वर्णन करते हैं; विजली की तेज चाल लोक में प्रसिद्ध है इसलिये घोड़े की चाल की तेजी वताने को विजली के वरावर दिखा दिया, अतएव विजली उपमान है; तेज चलने का गुण विजली और घोड़े दोनों में है, अतः यह सामान्य धर्म है और समान उपमा-द्योतक पद है, क्योंकि विजली और घोड़े की चाल की समता का सम्बन्ध दिखाता है।

उपमा दो प्रकार की होती है एक श्रौती दूसरी आर्थी। जहां पर तुल्य, समान, सम, सदृश उपमा वाचक शब्द हों

वहाँ आर्थी उपमा होगी और जहां यथा, ज्यौं, जैसे, इव, सी, से, सौं और लौं इत्यादि पद उपमा के द्योतक हों वहाँ श्रौती उपमा होगी ।

पूर्णोपमा

"फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे ।
दौरि आये भौंर से गुर्ना गुन करत गान,
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे ।
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के जियरे ।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज,
भौंर के से नखत नरिन्द भये पियरे ।"

उपमेय	उपमान	साधारण धर्म	उपमा वाचक
नैन	कमल	फूलि उठे	से
गुर्नीजन	भौंर	दौरि आये	से
सुजान	सिद्ध	सुखसागर के पास गये	से
सुमति	सुरभी	खुलन लागी	सी
चिन्ता	चिरिया	जागी	सी
राम	रवि	लसत	से
नरेन्द्र	भोरके नक्षत्र	पियरे	से

इस छन्द में ८ उपमाएं हैं। हरएक उपमा के चारों २ अङ्ग

सो श्रौती शब्दहिं सुनत जहँ वाचक को ज्ञान ।
अर्थ निरूपै आरथी द्वै विधि उपमा मान ॥

प्रत्यक्ष कथन किये गये हैं अतएव पूर्णउपमा है; सी और से श्रौती उपमा के चिह्न हैं इसलिये इस छन्द में ८ श्रौती पूर्णोपमा अलंकार हैं।

"फूले कंज समान मञ्जु-दृगता थी मत्तता कारिणी।
सोने सी कमनीय-कान्ति तनकी थी दृष्टि उन्मेषिनी ॥
राधा की मुसकानि की मधुरता थी मुग्धता-मूरिसी।
काली-कुंचित-लम्बमान अलकें थी मानसोन्मादिनी" ॥१॥

इसमें उपमेय,	उपमान,	साधारण धर्म	उपमावाचक
मंजुदृगता	फूलेकंज	मत्तता कारिणी,	समान
कमनीय-कान्ति,	सोने,	दृष्टि उन्मेषिनी,	सी

"सुखाति--सज्जित शोभन स्वर्गसा,
सदन श्रीवृषभानकुमारि का।
तुरत ही दुख के लवलेश से,
मलिन शोक समन्वित होगया ॥"

इसमें सदन उपमेय, स्वर्ग उपमान, सुखित सज्जित शोभन, साधारण धर्म; और सा उपमा वाचक शब्द हैं; चारों अंगों के होने से यह भी पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा

ऊपर कहा गया है कि जिस उपमा में उपमा के चारों अंग स्पष्ट कहे गये हों वह पूर्णोपमा है। यदि उपमा के एक, दो अथवा तीन अंग लुप्त हों तो वह लुप्तोपमा कहलाती है। जो अंग लुप्त होते हैं उन्हीं को लुप्तोपमा के पहले जोड़ देने से उस

लुप्तोपमा का पूरा नाम हो जाता है, जैसे धर्म लुप्त हो तो "धर्म लुप्तोपमा" और वाचक और धर्म लुप्त हो तो "वाचक-धर्म लुप्तोपमा" यदि उपमान लुप्त "हो तो उपमान लुप्ता" आदि आदि।

धर्म लुप्ता

"प्रति दिन जिसको मैं अंक में नाथ लेके,
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी।
अति प्रिय जिसका है वस्त्र-पीला-निराला,
"वह किशलय कैसे अंग वाला कहाँ है।"

अंग उपमेय, किशलय उपमान और से उपमा वाचक शब्द, सुन्दर साधारण धर्म लुप्त है; पूरी उपमा यह होगी 'किशलय के से सुन्दर अंग।'

वाचक धर्म लुप्ता

"दोनों प्यारे कुँवर घर के यों विदा माँगते ही।
रोके आँसू जननि दृग में एक ही साथ आये॥
धीरे बोली परम दुख से जीवनाधार जाओ।
दोनों भैया मुखशशि हमें लौट आके दिखाओ॥"

इसमें मुख उपमेय और शशि उपमान है धर्म और वाचक अंग लुप्त हैं।

उपमान धर्म लुप्ता

"पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निश दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती॥

उर पर जिसके है सोहती मुक्त-माला।
वह नव नलिनी से नैन वाला कहाँ है ॥१॥"

यहाँ 'से' उपमा वाचक, 'नैन' उपमेय, है और उपमान 'नलिनी' नहीं हो सकती, नलिनी के पुष्प होते हैं; इसलिये उपमान और धर्मलुप्त हैं।

इस प्रकार धर्म, उपमान, वाचक, वाचक-धर्म, धर्म-उपमान, वाचक-उपमेय, वाचक-उपमान, वाचक-धर्म-उपमान, लुप्त होने से लुप्तोपमा के ८ भेद होते हैं ॥(किन्तु पद्माकर जी ने १५ भेद लुप्तोपमा के कहे हैं)*

'मृग-नयनी' उपमा में पूरा पद इस प्रकार होगा।

मृगी के नेत्र के समान हैं चञ्चल नेत्र जिसके, इसमें 'चञ्चल' साधारण धर्म; 'समान' वाचक शब्द; मृगी के 'नेत्र' उपमान लुप्त है, मृग उपमान नहीं हो सकता।

---

*इक द्वै तीनरु चार को जहाँ लोप पहिचान।
यों सु पञ्चदश भेद युत लुप्तोपमा प्रमान ॥
वाचक लुप्ता यों समुझ "झख चख चञ्चल चारु।"
कहीं धर्म लुप्ता सु यों "शशि सो वदन निहारु ॥"
सुधरम वाचक लुप्त है कञ्ज दगन लखि लेहु।
उपमान रु उपमेय बिनु "शुक सी सुन्दर येहु ॥"
सूपमान लुप्ता गनहु "गज सम गमन सुमंद।"
उपमेयहु लुप्ता यहै "अति उत्तम ज्यों चन्द ॥"
उपमान रु वाचक लुपत "मधुर कोकिलातान।"
उपमेयहु और धर्म बिनु "कञ्चन लता समान ॥"
वाचक अरु उपमेय लुप "चपल चञ्चला देख।"
उपमानहु अरु धर्म बिनु "गज सी गति अवरेख ॥" (पद्माभरण)

×मालोपमा (माला, पंक्ति)

जहाँ एक ही उपमेय के बहुत से उपमान हों वहाँ मालोपमा होती है जैसे—उसका वदन कमल के समान सुन्दर, फूल के समान कोमल और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है। इसके दो भेद हैं:—समान धर्मा और असमान धर्मा।

समान धर्मा—

१-"वैनतेय बालि जिमि चह कागू। जिमि शश चहै नाग-अरि भागू।
जिमि चह कुशल अकारण कोही। सुख सम्पदा चहै शिव-द्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि-पद-विमुख परम-गति चाहा। तिमि तुम्हार लालच नरनाहा॥"

यहाँ राजा के लालच की समता कई असम्भव बातों से की है।

"सक्र जिमि शैल पर, अर्क तम फैल पर, विघन की रैल पर, लम्बोदर देखिये। राम दशकंध पर, भीम जरासंध पर, भूषण

उपमान रु वाचक धरम रहित सुनहु "पिकवान्।"
उपमेयहु वाचक धरम लुप्त "चञ्चला" मान॥
वाचक अरु उपमेय हु उपमान हु को लोप।
समुझ "मधुर मृदु" कुइलिया कीन्हों तेहि पै कोप॥
उपमेयहु उपमान अरु धर्म लुपत इक जान।
किय अनार उनपै जु रिस समुझे आपु "समान॥"
पूरन लुप्ता है वहाँ जहाँ चहुन को लोप।
जाहि निरखि शुक मंद हुव ताहि लखहु करि चोप॥ (पद्माभरण)

×मालोपम उपमेय इक ताके बहु उपमान।
ऊख पियूष मयूख सो इक तुव वचन विधान॥ (पद्माभरण)

ज्यों सिंधु पर कुंभज विशेखिये। हर ज्यों अनंग पर, गरुड़ भुजंग पर, कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिये। बान ज्यों विहंग पर, सिंह ज्यों मतंग पर, म्लेच्छ चतुरंग पर शिवराज देखिये।"

भिन्नधर्मा मालोपमा।

१—"बन्दों खलजस शेष सरोषा। सहस बदन बरनै पर दोषा॥
पुनि प्रणवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनहिं सहसदस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥"

२—"मुखरित करता था सद्म को वह सुकों सा।
कलरव करता था जो खगों सा बनों में॥
सुध्वनित पिक लों जो वाटिका था बनाता।
वह बहु-विधि कंठों का हा विधाता कहाँ है?"॥

*रसनोपमा

जहाँ उपमेय क्रम से एक दूसरे के उपमान होते चले जाँय वहाँ रसनोपमा होती है:--

"सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु उद्यम सम फल जान।
फल समान पुनि दान है दान सरिस सनमान॥"

यहाँ पूर्व उपमान उत्तर का उपमेय होता जाता है।

*रसनोपम उपमेय जहँ होत जात उपमान।
सुभ सरूप के सम सुमति सुमति सरिस गुन ज्ञान॥ (पद्माभरण)

* उपमेयोपमा

जहाँ पर उपमेय, उपमान एक दूसरे के आपस में उपमान उपमेय कथन किये जाँय; जैसेः--

(१) "तो मुख पंकज तुल्य है, पंकज तो मुख तुल्य"

(२) "कामिनि दामिनि सी भई, दामिनि कामिने आहि"

(३) "वे तमसे तुम उन सम स्वामी"

(४) "तू रम्भा सी रूप में तो सी रम्भा नारि"

+ अनन्वय

जहाँ एकही वस्तु में उपमान और उपमेय दोनों हों जैसेः—

(१) "माता तेरे सम जग मे तूही होती है"

(२) "धर्म धर्म ही है"

(३) "जितने गुण सागर नागर हैं।
कहते यह बात उजागर हैं॥
अब यद्यपि दुर्लभ आरत हैं।
पर भारत के सम भारत है॥"

---

*"उपमा लागे परसपर सो उपमा उपमेय।
खन्जन हैं तव नयन से तव दृग खन्जन सेय॥"

+"उपमानो उपमेय ही कहत अनन्वय ताहि॥" (भाषाभूषण)

+ ललितोपमा

उपमेय और उपमान की समता जहाँ उपमावाची शब्दों द्वारा न बताकर पदलालित्य द्वारा समता, निंदा, ईर्षादि भाव सूचन किये जावें वहाँ ललितोपमा होती है।

"साहि तनै सरजा शिवा की सभा जामधि है मेरु वारी सुरकी सभा को निदरति है। भूषण भनत जाके एक २ सिखर ते कते धौं नदी नद की रेल उतराति है। जोन्ह को हँसति जोति हीरामनि मंदिरन कंदरन में छवि कुहू की उछराति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामें नखतावलि सों बहस दीपावली कराति है"

* प्रतीप (प्रतिकूल)

जहाँ उपमेय को उपमान मानकर दोनों की समता दिखावें वहाँ पहला 'प्रतीप' होता है। यह उपमालंकार का उलटा है:—

उदाहरण

"संध्या फूली परम-प्रिय की कान्ति सी है दिखाती।
मैं पाती हूँ रजनि-तनको श्याम के रंग डूबा॥
ऊषा आती प्रति दिवस है प्रीति से रंजिता हो।
पाया जाता वर-वदन सा ओप आदित्य में है॥"

+जहँ समता को दुहुन की लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत॥ (भूषण)

*"या विधि प्रथम प्रतीप बखान, उपमै को कीजे उपमान" (पद्मा०)

यहां संध्या, रजनी, आदित्य आदि प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय मानकर, उपमेय श्रीकृष्ण के अंगों को उपमान मान कर समता की गई है, इसलिये पहिला प्रतीप है।

"मुख सो शोभित सरद शशी कमल सुलोचन सेय"

यहां पर शरद-शशि और कमल प्रसिद्ध उपमान उपमेय मान लिये गये हैं और मुख और नेत्र उपमान हैं अतः प्रथम प्रतीप हुआ।

द्वितीय प्रतीप×

जहाँ उपमेय का उपमान से अनादर किया जाय वहाँ द्वितीय प्रतीप होता है:—

जैसे—कान्ते ! तू अपने मुख-सौन्दर्य का क्यों गर्व करती है ! उसके समान चन्द्र, कमल इत्यादि बहुतसी वस्तुयें हैं।

"प्रकृति-माधुरी पर कहा, गर्व तोहि कसमीर।
नन्दन बन तो सम अहै, सोहत परम गंभीर॥

"नैन तजहु तुम निज गरव यों बहु खञ्जन गोत"

तृतीय प्रतीप*

जहाँ वर्ण्य उपमेय के बल से अन्य उपमान का अनादर हो, अथवा उपमान का उपमेय से अनादर होय; वहाँ 'तृतीय प्रतीप' होता है; जैसे—

×उपमै को उपमा सो वरनत जहां अनादर जानो।
ताहि प्रतीप दूसरो कहिये चतुर सबै पहिचानो॥ (अलंकार दर्पण)

*वर्न वस्तु वर्न हो अवर्न को अनादरै सो तीसरो प्रतीप कवि वृन्द गनायो है। (कविकुलकण्ठाभरण)

"रीस करें का बापुरे अधरन की फल विम्ब ।
साधि रहे निज नाम को इन ही के अवलम्ब ॥"

विम्ब उपमान का उपमेय अधरन से अनादर किया गया है ।

"पाहन जिय जानि गर्व करि हों ही कठिन अपार ।
चित दुर्जन के देखिये तोसे लाख हजार ॥"

यहाँ उपमान 'पाहन के गर्व' को, दुर्जनों के चित्त को उपमेय मान नष्ट किया है (अलंकार प्रकाश)

"कोयल अपने वचन को काहे करति गुमान ।
मधुर वचन वनितान के तेरे वचन समान ॥

उसमें वानितान के मधुर वचन उपमेय से कोयल के मधुर वचन उपमान का अनादर हुआ ।

"सुछवि गरब माति करु कमल यों वनितन के नयन"

*चतुर्थ प्रतीप

जहाँ उपमान को अन्य उपमेय के अयोग्य सिद्ध किया जाय अर्थात् उपमेय से उपमान का अनादर हो ।

"छीरधि में पंक कलानिधि में कलंक याते
रूप इक टंक ये लहै न तव जसके"

"तुव मुख सों सुंदर ससिहिं क्या भाषै कवि गोत ।"

यहाँ उपमेय मुख के तुल्य उपमान चन्द्र नहीं है ।

---

*अन आदर उपमेय तें जब पावै उपमान ।
तीक्षण नैन कटाच्छ ते मन्द काम के बान ॥ (भाषा भूषण)
उपमै जोग न उपमा होय । यह प्रतीप है चौथो सोय ॥ (अलंकार दर्पण)

* पञ्चम प्रतीप

"उपमान के सब कर्मों का करने वाला ही उपमेय है" ऐसा कह कर उपमान की अनावश्यकता दिखलाई जाय अर्थात् उपमेय के आगे उपमान व्यर्थ समझा जाय वहाँ पञ्चम प्रतीप होता है।

"अमिय झरत चहुँ ओर ते नयन ताप हर लेत ।
राधा जू को वदन यह चन्द उदय केहि हेत ॥"

यहाँ राधाजी के वदन के सामने चन्द्रमा व्यर्थ ठहराया है।

"अमर होय नर नाम सुधाते फेरि सुधा को काम कहा ।"

मनुष्य की नाम (यश) रूपी सुधा से अमर होजाने की स्थिति में अमृत की अनावश्यकता दिखलाई है; अतः पञ्चम प्रतीप हुआ।

"कछुन कञ्ज लखि वदन यह"

---

‡ रूपक (समता)

जहाँ उपमेय और उपमान का एक रूप ही कथन किया जाय भिन्नता का कोई भाव न हो वहाँ 'रूपक' अलंकार होता है।

रूपक दो प्रकार का होता है:--अभेद रूपक और ताद्रूप

---

*व्यर्थ होय उपमान जब उपमे को लखि सार।
दृग आगे मृग कछु न ये पंच प्रतीप प्रकार ॥ (भाषा भूषण)

‡ उपमेय रु उपमान मिलि एक रूप ह्वै जाहिं।
यह रूपक जो रूप है समुझि लेहु मन माहिं ॥ (अलंकार दर्पण)

अभेद रूपक

उपमालंकार में उपमेय के गुण, कर्म, स्वभाव क्रिया आदि को उपमान के गुण कर्म स्वभाव और क्रिया के समान कथन किया जाता है अर्थात् दोनों एक धर्म वाले कथन किये जाते हैं; परन्तु अभेद रूपक में उपमान का उपमेय में अभेद आरोप ही वर्णन किया जाता है; जैसे—

"प्रभु रुख देखि विनय बहु भाषी, चले हृदय पद-पंकज राखी"

यहाँ पंकज का पदों में अभेद आरोप है वास्तव में पंकज ही पद नहीं हैं।

प्रत्येक रूपक तीन प्रकार का होता है:—समअभेद, अधिकअभेद और न्यून अभेद।

जब उपमान और उपमेय को तुल्य (एकसा) मानकर अभेद किया जाय तब उसे सम अभेद रूपक कहते हैं; इसके तीन भेद हैं:—सावयव, निरवयव और परम्परित।

सावयव सम अभेद रूपक

जिसमें उपमान के समस्त अंगों का उपमेय के समस्त अंगों में अभेद किया गया हो; इसके दो भेद हैं:—१ समस्त वस्तु विषयक २ एक देश विवर्ति।

"औरन मौर मनोहर मौलि अमोल हरा हिय मोतिया भायो।
नूतन पल्लव साजि झँगा पटुका कटि सोन जुही छवि छायो॥
कोकिल गायक भौंर बराती चढ्यो पवमान तुरंग सुहायो।
छाय उछाह दिगंतन राम ललाम वसंत बना बनि आयो॥"

इक तद्रूप अभेद इक कहियत रूपक दोय।
अधिक न्यून सम एक इक तीन २ विधि होय॥ (अलंकार दर्पण)

यहां वसंत उपमेय के सब अंग और, मोतिया, पल्लव सोनजुही, कोयल भौंर, पवन, में क्रम से उपमान दूलह के मौर, हार, झंगा, पटुका, गायक, बराती घोड़ादि सब अंगों का अभेद आरोप है।

"नीलाम्बर-परिधान हरित पट पर सुन्दर हैं।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूलि तारे मण्डल हैं।
वन्दीजन खगवृन्द शेष फल सिंहासन है॥
करते अभिषेक पयोधि हैं बलिहारी इस वेष की!
हे मातृ-भूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥"

यहाँ पर मातृभूमि उपमेय है और सर्वेश की मूर्ति उपमान है, नीलाम्बर आदि उपमा उपमेय के उपाङ्ग हैं उन सब का सादृश्य कथन है।

यह दोनों उदाहरण समस्त-वस्तु-विषयक के हैं। एक देश विवर्ति में कुछ अङ्गों का स्पष्ट कथन करके कुछ अर्थ से जाने जाते हैं; जैसेः—

भूप मनोरथ शुभगवन सुख सुविहंग समाज।
भिल्लनि जनु छाड़न चहति वचन भयंकर बाज॥

यहाँ भूप मनोरथ को वन, सुख को पक्षी समाज तथा कैकेयी के वचनों को बाज ठहरा कर स्पष्ट कथन किया है पर भिल्लनि रूप कैकेयी को कथन नहीं किया है, वह अर्थ से जानी जाती है।

निरवयव-सम-अभेद-रूपक

विना अंगों के जब उपमेय में उपमान का आरोप हो वहाँ निरवयव रूपक होता है।

इसके दो भेद हैं शुद्ध और मालाकार।

शुद्ध—एक उपमेय का एक उपमान में अंग रहित आरोप हो; जैसे:——

"छिनु २ प्रभु पद कमल विलोकी। रहियों मुदित दिवस जनु कोकी"

यहाँ एक पद में एक कमल का आरोप है, उनके अंगों का नहीं।

"अरिविन्द-नन्द सो न सकति अमन्द पाई
मातु-नख-चन्द की छटा ही चित्त भावती।"

यहाँ पर नख में चन्द्रमा का विना अंगो के अभेद है। यह शुद्ध निरवयव-सम-अभेद रूपक है क्योंकि एक उपमेय में एक ही उपमान का अभेद है और जहाँ पर एक उपमेय में अनेक उपमानों का आरोप हो वहाँ पर "मालाकार-निरवयव-सम-अभेद रूपक" होता है; यथा:—

मालाकार निरवयव

चिन्ता रूपी मालिन निशि की कौमुदी है अनूठी।
मेरी जैसी मृतक बनती काज संजीवनी है॥
आशा मेरे हृदय-मरु की मंजु मंदाकिनी है।
नाना पीड़ा मथित तन के हेतु है शान्तिधारा॥

यहाँ एक ही आशा उपमेय में अनेक उपमान कौमुदी, संजीवनी, शान्तिधारा और मंदाकिनी का आरोप है।

"विधि के कमण्डलु की सिद्धि है प्रसिद्धि यही हरि-पद-पंकज प्रताप की लहर है। कहैं पदमाकर गिरीश शीश मण्डल के मुण्डन की माल तत्काल अघ हर है। भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है। क्षेम की छहर गंगा! रावरी लहर कलि काल को कहर यम-जाल को जहर है।"

इसमें गंगा एक ही उपमेय में अनेक उपमानों का आरोप किया गया है।

परंपरित रूपक

जहाँ एक उपमेय में किसी उपमान का आरोप दूसरे उपमेय में उसके उपमान के आरोप का हेतु हो उसे परंपरित रूपक कहते हैं।

परंपरित रूपक शुद्ध और मालाकार दो प्रकार का होता है तथा श्लिष्ट और भिन्न शब्द होने से प्रत्येक के दो भेद हो सकते हैं:—

"तुम बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक समान",

यहाँ पर रघुकुल में कुमुद का आरोप किया है, वही रामचन्द्र में बिधु के आरोप का हेतु है तथा बिधु कुमुद आदि भिन्न शब्द हैं अतः भिन्न-शब्द-शुद्ध-परंपरित रूपक है।

"सच्चा प्यारा सकल व्रज का वंश का है उजाला।
दोनों का है परम धन औ वृद्ध का नैन तारा॥
बालाओं का प्रिय स्वजन औ बंधु है बालकों का।
ले जाते हैं सुरतन कहाँ आप ऐसा हमारा॥"

यहाँ सुरतन में कृष्ण के आरोप का वंश में गोप-वंश का आरोप हेतु है। वंश शब्द श्लिष्ट है इसके बाँस और गोप-वंश दो अर्थ हैं। इसलिये पहिला उदाहरण भिन्न शब्द तथा दूसरा श्लिष्ट-शब्द मालाकार का उदाहरण है।

"अंगद तुही बालिकर बालक। उपजेऊ वंस अनल कुल घालक"

यहाँ वंस शब्द श्लिष्ट है जिसका अर्थ कुटुम्ब व बांस दोनों हैं। अंगद में अग्निका आरोप है। और यहाँ एक उपमेय में एक ही उपमान का आरोप है अतः श्लिष्ट-शुद्ध-परंपारित हुआ

धरत जहाँ नंद लाडिलो चरण कमल सुख पुञ्ज।
भक्तन के दृग-भंवर है करत फिरत तहँ गुंज॥

यहाँ चरण में कमलों का आरोप ही दृगों में भ्रँवर के आरोप का हेतु है।

अधिक-अभेद-रूपक।

उपमेय उपमान का अभेद होने पर उपमेय में कुछ अधिक गुण दिखाया जाय।

१—"मयंक है श्याम बिना कलंक का।"

चूंकि साधारण चन्द्रमा में कलंक है परन्तु श्याम बिना कलंक का चन्द्र है।

२—"वंदत अनन्द कन्द कीरति अमंद चन्द" ।

उपमेय कैसा चन्द्र है जो—

३—"उदय सदा अथइय कबहूँना"

४—"धाता द्वारा सृजित जग हो मेदिनी बीच आके ।
पाके खोया रतन कितने प्राणियों ने अनेकों ॥
जैसा प्यारा रतन ब्रज ने हाथ से आज खोया ।
पाके ऐसा रतन अबलों है न खोया किसी ने ॥"

यहाँ पर रत्न में कृष्ण का अभेद आरोप तो है ही, परन्तु 'ऐसा प्यारा रत्न' पद सामान्य रत्नों से कृष्ण रूपी रत्न में विशेषता दिखाता है ।

न्यून-अभेद-रूपक

जहाँ अभेद होने पर भी उपमेय में उपमान से कुछ न्यूनता दिखाई जाय; जैसे:—

"श्री चन्द्रहास अवनी-तल चन्द्र ही है ।"

यहाँ चन्द्रहास रूपी चन्द्रमा आकाश चन्द्रमा नहीं है किन्तु अवनी का कथन है ।

ताद्रूप रूपक

उपमेय में उपमान का अभेद न करके उससे पृथक् वैसा ही रूप, गुण और कार्य वाला दूसरा बताया जाय; प्रायः यह द्वितीय अपर इत्यादि वाचक शब्द द्वारा कथन किया जाता है:—

"जाते २ पहुँच मथुरा धाम में उत्सुका हो।
न्यारी शोभा नगर वर की देखना मुग्ध होना॥
तू होवेगी चकित लखके मेरु से मंदिरों को।
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क से हैं॥"
"अचल नरेश आप दूसरो दिनेश है"

यह समताद्रूप रूपक है, न्यूनता और अधिकता से न्यून और अधिक ताद्रूप रूपक भी होते हैं।

"जस ध्वज वा ध्वज ते अधिक तीन लोक फहरात।
धर्म मित्र बड़ मित्र है मरत जियत संग जात॥"

* परिणाम (प्रकृति का बदलना)

अभेद रूपक में तो उपमान, उपमेय की सुन्दरता ही बढ़ाता है परन्तु परिणाम में अभेद होकर कोई काम करता है; यदि सम अभेद के कथित उदाहरण में "मातु नख चन्द की छटाही चित भावती" यहां "भावती" पद के स्थान पर "चोरती" जोड़ने से उस छंद में परिणाम अलंकार होता है इसमें उपमान अकेला असमर्थ होने से कोई काम नहीं करता किन्तु उपमेय के साथ एक रूप होकर करता है।

"सारी सिर वैंजनी में कंचन वुटी की ओप मुकत किनारी चहुँओरन गसत ह। जरबीली जरत जरी की जाफरानी पाग कोर में जमुर्रदी जवाहिर लसत हैं। रतन सिंहासन पर दीने गलबाहीं मुखचन्द मुसक्यानि भवताप को हरत हैं। या विधि अनंद भरे राधा ब्रज-चन्द सदा दम्पति चरण मेरे हिय में बसत हैं।"

---

*विषई करे विषय ह्वै काम अलङ्कार सो है परिणाम

यहाँ मुख-चन्द में परिणाम है।

" *भुज-लतान सों लाल को, गहि व्रज-बाल रसाल।*
मुदित होत करपंकजनि, मुख सों लाय गुलाल॥"

यहाँ भुज-लतानि में परिणाम है।

*** उल्लेख (लिखना, कहना)।**

इसके दो भेद हैं—

१—एक ही वस्तु को अनेक जन अनेक प्रकार से देखें;

२—एक ही मनुष्य विषय भेद से एक वस्तु को अनेक प्रकार से देखे; वहां उल्लेख अलङ्कार होता है।

प्रथमभेद—

"*जनक जाति अवलोकहिं कैसे, सजन संग प्रिय लागहिं जैसे।*
सहित विदेह बिलोकहिं रानी, शिशु सम प्रीति न जाय बखानी॥
जोगिन परमतत्व मय भाषा, संत शुद्ध मन सहज प्रकाशा।
हरि भगतन देखेउ दोउ भ्राता, इष्ट देव इव सब सुख दाता॥
रहे असुर छल जो नृप वेषा, तिन प्रभु प्रकट काल सम देखा।"

यहाँ अनेक लोगों को राम के अनेक रूप दिखाई दिये हैं

---

*एकहि बहुत बहुत विधि जानैं। अलंकार उल्लेख बखानैं॥
बहुतन के इक गुन में जानों। सो द्वितीय उल्लेख बखानों॥
(अलंकार दर्पण)

द्वितीय भेद ।

" सुखद सुजन ही के मान के करन हार,
दीनन के दारिद-दवा के जलधर हो ।
कहै कवि ललित प्रभाव के प्रभाकर से,
बस रस ही के बस ही के सुधाकर हो ॥
आछे रहो राजन के राजा दिग्विजयसिंह,
धीर-धुर-धर सुखमा के मानसर हो ।
शोभा शीलवरहो, परम प्रीतकरहो,
निगमनीतिधर हो हमारे देवतर हो ।"

यहाँ एक ही दिग्विजैसिंह का अनेक प्रकार का वर्णन है

अतिशयोक्ति

जहाँ पर किसी की उचित से अत्याधिक सराहना की गई हो वहां अतिशयोक्ति-अलंकार होता है।

यह कई प्रकार का होता है।

प्रथम भेद

* रूपकातिशयोक्ति

(रूपक अलंकार में उपमेय कथन के साथ अभेद होता है, परन्तु यहाँ पर केवल उपमान का कथन होता है; जैसेः—

"इस नन्हें से पुष्प को तोड़ले, और उसे लेले, विलम्ब न कर, मुझे डर है कहीं मुरझा कर धूल में न मिल जाय")

---

* उपमान वरने, बोध से उपमेय को पहिचानिये।
तहँ रूपकातिशय उकति ही हिय माहि नीके आनिये ॥ (अलंकार दर्पण)

यहाँ जीवन रूपी फूल का वर्णन है; पर, जीवन उपमेय फूल उपमान में लीन है।

"नैया मेरी तनक सी बोझी पाथर भार।
चहुँ दिशि अति भौंरें उठत केवट है मतवार॥
केवट है मतवार नाव मझधारे आनी।
आँधी उठी प्रचंड तेहिपर बरसत पानी॥
कह गिरधर कविराय नाथ हो तुमहिं खेवैया।
उठै दया को डाँड़ घाट पर आवे नैय्या॥"

यहाँ जीवन रूपी नैय्या के स्थान पर केवल नैय्या का कथन है।

'सिरस-सुवन किमि वेधिय हीरा'

यहाँ सिरस सुवन रूप 'राम', व हीरारूप 'धनुष' है, राम व धनुष उपमेयों का कथन न करके केवल 'सिरस-सुवन' व हीरा उपमानों का ही कथन है।

† भेदकातिशयोक्ति

जहाँ यथार्थ में भेद न होने पर भी "और" "अन्य" आदि शब्दों से भेद कथन किया जाय; जैसे:—

"मुख सरवन दृग नासिका सबही के इकठौर
कहिबौ, सुनिबौ, देखिबौ चतुरन कहँ कछु और"।

यहाँ पर यथार्थ भेद न होने पर भी भेद कथन किया है।

---

†अतिशयोक्ति भेदक वहै यह विधि बरनत जात।
जो भेद और पदन सों जाठौर बरनन कीजिये।
तब भेदिकातिशयोक्ति नीके समुझ मन में लीजिये॥ (अलंकार दर्पण)

१-"औरे हांसिवो देखिवो औरे याकी बात"

२-"वह कविता औरे जु सुनि घूमत सुघर समाज"

* सम्बंधातिशयोक्ति

जहाँ वास्तव में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध लगाया जाय अथवा अयोग होने पर भी योग दिखाया जाय; जैसेः—

"इस महल का कलश आकाश को छूता है" आकाश को महल के छूने का अयोग होने पर भी योग कहा है।"

"जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूप मय कच्छप सोई॥
शोभा रजु मंदर शृंगारू। मथै पाणि पंकज निज मारू॥

एहिविधि उपजे लक्ष्मि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल"॥

यहाँ छवि-सुधा-समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी का सीता के मुख के साथ असम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध कथन किया गया है। जो 'यदि' शब्द कथन से यह संभाव्यमान है। यदि जो 'यदि' शब्द न हो तो निर्णीयमाना सम्बंधातिशयोक्ति होगी।

उदाहरण अलंकार प्रकाश में इस प्रकार दिया है

"जलद! गरज करु नाहिं सुनि मेरो मासिक गरभ
गुनि मन गज-धुनि ताहि उछलतु है मो उदर में"

---

*जहाँ अजोग में जोग प्रगट कल्पना कीजिये।
बरणत हैं कवि लोग सम्बन्धातिशयउकति सो॥ (अलंकार दर्पण)

"कवि कहरें अति उच्च निशाना। जिनमहँ अटकत विबुध विधाना॥"

देवताओं के विमान बहुत ऊँचाई पर होते हुए भी निशानों का उलझना एक असम्भव को सम्भव कथन किया है।

* असम्बन्धातिशयोक्ति।

वास्तव में सम्बन्ध होने पर असम्बन्ध कथन किया जाय अथवा योग होने पर अयोग दिखाया जाय; जैसे:—

१-"बूदीनाथ प्रबल प्रतापी रघुवीरसिंह
तेरो जस मावत न चौदहू भुवन में।"

यहाँ पर चौदह भुवनों में यश के समाजाने का योग होने पर भी उसका अयोग (न समाना) वर्णन किया गया है।

२-"जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो विलोकि सुरनायक मोहा॥"

यहाँ नीच गृह की सम्पति को देख कर इन्द्र का मोहित होना जोग में अजोग है।

३-"अति सुन्दर लखि मुख तिय तेरो,
आदर हमन करत शशि केरो।"

यहाँ अति सुन्दर मुख जोग है और चन्द्रमा का आदर न करना अजोग है।

४-"दायज अमित न जाय कहि दीन विदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक सम्पदा थोरि॥"

---

* अतिशयोक्ति दूजी वहै जोग अजोग बखान।
तो कर आगे कल्पतरु क्यों पावै सन्मान॥ (पद्माभरण)

जहाँ लोक सम्पदा को भी दहेज की सम्पत्ति से कम ठहराया है।

* अक्रमातिशयोक्ति

जहाँ पर कार्य और कारण का एक साथ ही कथन है; जैसेः–

"रण मध्य राम ऐसो कौतुक करत आज ।
बाणनि के संग छूटे प्राण दनुजन के ॥"

यहाँ प्राण और बाणों का साथ छूटना दिखाया गया है।
सन्धानेउ प्रभु विशिख कराला । उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला॥
यहाँ बाण सन्धान और समुद्र से ज्वाला का उठना एक साथ हुआ है।

+ चपलातिशयोक्ति

कारण के ज्ञान मात्र से ही कार्य उत्पन्न हो; जैसेः—

"बन्दहु गुरुपद नखमणि ज्योती ।
सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती ॥"

यहाँ नख-मणियों के प्रकाश से नहीं वरन् स्मरण मात्र से ही कार्य रूप दिव्यदृष्टि हो जाती है।

"आयो आयो सुनत ही शिव सरजा तुवनाम ।
वैरि नारि दृग जलहि सों, बूढ़ि जात अरिगाम ॥"

---

* अतिशयोक्ति अक्रमजु संग कारज काज बखान ।
"कढ़त साथ ही म्यान ते अरि रिपु तन ते प्राण ॥" (पद्माभरण)
\+ चपलात्युक्ति जो हेतु के होत ज्ञान ही काज ।
"कंकन ही भई मूंदरी पीव गवन सुनि आज ॥" (भाषा भूषण)

"श्रवण सुनत रघुवंश मणि, आवत सेन समेत ।
निकट निपट निश्चर सुभट, तन मन भये अचेत ॥"

यहाँ राम के आते ही राक्षस अचेत हो गये अर्थात् कारण के सुनते ही कार्य हो गया ।

"विमल कथा कर कीन्ह अरम्भा । सुनत नसाय मोह मद दम्भा ॥"
"तब शिव तीसर नयन उघारा । चितवत काम भयेऊ जरि छारा॥"

*अत्यन्तातिशयोक्ति

जहाँ पर कारण से प्रथम ही कार्य कथन किया जाय जैसे:-

"हनूमान की पूँछ में लगन न पाई आग ।
लंका सिगरी जरिगई गये निशाचर भाग ॥"

यहाँ पूँछ में आग लगने से पहिले ही जो (लङ्का जलने का हेतु है) लंका जलगई ।

"राजन राऊर नाम जस, सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिप मणि, मन अभिलाष तुम्हार॥"

यहाँ इच्छा से पहिले ही फल की प्राप्ति है ।

"बान न पहुँचे अंग लों, अरि पहिले गिर जाँय"

---

*पहिले कारज होय पीछे कारण होय जब ।
भाषत हैं सब कोइ अत्यन्तातिशयोक्ति सो ॥ (अलंकार दर्पण)

× सापह्नव अतिशयोक्ति

जहाँ रूपकातिशयोक्ति अपह्नव सहित हो वहाँ सापह्नातिशयोक्ति होती है; जैसेः—

" *अहि शशि-मंडल पै बसें जिय पताल जनिजान* "

उत्प्रेक्षा (तुलना, वैसी ही भावना)

(जहाँ अन्य वस्तु, हेतु और फल में दूसरी वस्तु, हेतु और फल की संभावना करली जाय) वहां "उत्प्रेक्षा" अलंकार होता है।

उपमालंकार में उपमेयोपमान की समता की जाती है रूपक में अभेद आरोप होता है परन्तु उत्प्रेक्षा में भेद सहित आरोप होता है; जैसे 'पद-पंकज' पद ही पंकज, रूपक; और 'पद मानों पंकज हैं'; यह उत्प्रेक्षा अलंकार है। (यह दो प्रकार का होता है वाच्या और प्रतीयमान) * (जहां मनु, मानो, जनु, जानो, इव आदि पदों द्वारा संभावना होय वहां वाच्या) और (जहां उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द न हों वहां प्रतीयमान उत्प्रेक्षा होती है। इन दोनों उत्प्रेक्षाओं के तीन २ भेद हैं; वस्तूत्प्रेक्षा' 'हेतूत्प्रेक्षा' और 'फलोत्प्रेक्षा')। प्रत्येक के दो दो भेद और अन्तर्गत हैं।

+ वस्तूत्प्रेक्षा

(जहाँ पर एक वस्तु में अन्य वस्तु की संभावना की जाय। इस के दो भेद हैं, उक्तविषया—जिसका विषय कथन

× सापह्नव गुन और के और हिं पर ठहराय।
"सुधा भरयो यह वदन तुव चन्द कहै बौराय॥" (भाषा भूषण)

* इसे गम्योत्प्रेक्षा भी कहते हैं।

+वस्तु वक्ति विषयाहिं उत्प्रेक्षा भाषै विषय।
वस्तु माहिं ठहराय करै आन सम्भावना॥ (,,)

किया जाय, अनुक्तविषया जिसका विषय कथन न किया जाय।

×उक्त विषया।

(वाच्या) ("लता भवन ते प्रगट भये तेहि अवसर दोउ भाय।
निकसे जनु युग विमल विधु जलद पटल विलगाय॥")

यहाँ लता-भवन से दोनों भाइयों का निकलना पहिले कहा गया है यह विषय है फिर बादल से दो चन्द्रमाओं के निकलने की सम्भावना की गई है जो असम्भव होने पर सम्भव मानी गयी है; जैसे:—

"सोहत सुन्दर श्याम सिर, मुकुट मनोहर जोर।
मनो-नीलमणि शैल पै नाचत राजत मोर॥"

जिसकी सम्भावना की जाय वह सम्भाव्यमान और जिसमें सम्भावना की जाय वह सम्भाव्य कहलाता है, जहाँ दोनों हों वहाँ उक्त विषया और जहाँ सम्भाव्य न हो उसे अनुक्त-विषया कहते हैं।

वाच्या उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

("केसरि तिलक ललाट-पटल छवि धरत विशेखै।
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेखै॥")

यहाँ पर ललाट-पटल पर केसर तिलक में सुन्दर कसौटी के ऊपर सोने की रेखा की संभावना की गई है 'केसर तिलक" उत्प्रेक्षा का विषय कहा गया है।

× बरनि वस्तु के माहिं "होय आन सम्भावना।"
विषय कहै जब नाहिं सो अनुक्त विषया अरै॥

उक्तविषया प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा

"श्रीमुख पर लिय झलक अलक अस लस घुंघरारे ।
रहे घेरि नवकँज मधुप सौरभ मतवारे ॥"

यहाँ भी उत्प्रेक्षा विषय "अलक" विषय के कथन से स्पष्ट कथन किया है। यहाँ मनु आदि शब्दों का कथन नहीं है।

अनुक्तविषया

" मनहुँ चन्द यह उदित है बरसावत है आगि "

यहाँ विरहिणी सीताजी की उक्ति है, चन्द्रमा ने उदित होकर किरणों को फैला दिया वही मानो आग बरसाना है। चाँदनी का स्पष्ट कथन नहीं है अतः अनुक्त-विषया है।

हेतु उत्प्रेक्षा

जहाँ सत्य हेतु में दूसरा हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय; इसके दो भेद हैं। एक सिद्ध विषया या संभाव्य दूसरा असिद्धविषया या असंभाव्य।

सिद्ध विषया–जिसका विषय संभव हो।

असिद्ध विषया–जिसका विषय असंभव हो।

* सिद्ध विषया हेतु उत्प्रेक्षा

"कत दिखाय कामिनि दई दामिनि को यह बाँह।
याही ते मानों फिरै, फरफराति घन माँह ॥"

आकाश में बिजली थर्थराने का हेतु "कामिनि की बांह दिखाना" मान लिया है जो सर्वथा अहेतु है; और आकाश में बिजली का फर्फराना संभव है इसलिए सिद्ध विषया है।

---

*जब अहेत में कोइ, करै हेतु सम्भावना।
विषय सिद्धि जहँ होय, ताहि सिद्ध विषया कहैं॥ (अलंकार दर्पण)

असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा

"बढ़त ताड़ को वृक्ष यह मनु चूमन आकाश"

यह आकाश को ताड़का चूमना असंभव है; अतः वाच्या असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा है।

"चारु चरण-नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमवश विनती करहीं। हमहिं सीय-पद जनि परिहरहीं॥"

यहाँ हिलने डुलने से नूपुरों की ध्वनि को प्रार्थना करते हुये सम्भावना की गई है नूपुरों की आवाज सर्वथा सम्भव है प्रार्थना करना अहेतु में हेतु माना है, इसलिये सिद्धास्पदा है।

"रवि अभाव लखि रैन में, दिन लखि चन्द विहीन।
सतत उदित यहि हेतु जनु, यश-प्रताप भुवि कीन॥"

यहाँ दिन में चन्द्रमा तथा रात्रि में सूर्य उदय न होने का हेतु यश अथवा प्रताप का उदय होना सम्भावित किया गया है, अर्थात् अहेतु को हेतु माना है; परन्तु न तो दिन में चन्द्रमा उदय होता है और न रात्रि में सूर्य, अतः असिद्ध-विषय हुआ अर्थात् यहां हेतूत्प्रेक्षा-असिद्ध-विषया हुई।

"इनहिं देखि विधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावन लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न आये। तेहि इर्षा बन माहिं दुराये॥"

यहाँ राम लखन की पटतर बनाने की ब्रह्मा की इच्छा होना, ऐसा न होने को भी होने की सम्भावना की है तथा न बनने पर इन्हें वन में छिपाया यह हेतु माना, इसलिये यह हेतूत्प्रेक्षा हुई। इनमें से है एक भी बात नहीं, सब कल्पित हैं इसलिये असिद्ध-विषया हुई।

फलोत्प्रेक्षा

वास्तव में जो फल न हो उसे फलभाव से कथन किया जाय। इसके भी हेतूत्प्रेक्षा की भाँति "सिद्ध विषया और असिद्ध विषया" नामक दो भेद हैं।

" दवत नीर के भार सन गिरत हिमहिं नित देख।
धारत गिरि निज शीश पर करि यह कृपा विशेष ॥"

धूल की दुर्दशा देख, उसे पर्वतों को निज शिर पर धारण करना, फल रूप में कथन किया गया है।

"प्रबल घाम सन विन्ध्य कहँ तपत मेघ जनु जानि।
बार बार सुख देन हित अब बरसावत पानि ॥"
"तेरे तन के बरन के सुबरन हू न समान।
मानों परि पावक जरै बरन्यो सकल जहान ॥"

सापह्नव उत्प्रेक्षा

अपह्नुति अर्थात् निषेधसूचकशब्दसहित जहाँ उत्प्रेक्षा हो वह "सापह्नव उत्प्रेक्षा" होती है। इसमें भी ऊपर कहे हुए सब भेद होते हैं; जैसेः—

"दीन किसानन हेतु मनु, है सुर यह नर नाहिं"

सूचना—जहां मिस शब्द युक्त उत्प्रेक्षा हो वहां कैतवापह्नुति सहित उत्प्रेक्षा होगी।

———

* व्याजस्तुति

जहाँ पर निंदा-गर्भित स्तुति की जाय अथवा स्तुति-गर्भित निंदा की जाय अथवा किसी की निन्दा-स्तुति से अन्य की निन्दा-स्तुति हो वहां "व्याज-स्तुति अलंकार" होता है; जैसे—

स्तुति में निन्दा:--

१-"नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छिमा कीन तुम धर्म बिचारी॥"

२-"धन्य कीश जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।"

निन्दा में स्तुति:—

१—"स्वर्ग चढ़ाये ते पतित, गंग कहा कहुँ तोय"

२—माधव आप सदा के कोरे।

दीन दुखी जो तुमको जांचत सो दानिन के भोरे॥
किन्तु बात यह तुव स्वभाव की नेकहु जानत नाहीं।
सुनि सुनि सुजस रावरो तुव ढिंग आवन को ललचाहीं॥
नाम धरै तुमको जग मोहन मोह न तुमको आवै।
करुणानिधि तुव हृदय न एकहु करुनाबुन्द समावै॥
लेत एक को देत दूसरेहिं दानी बनि जग माहीं।
ऐसो एर फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाहीं॥

---

*"व्याज स्तुति निन्दा मिसहिं जबै बड़ाई होय"
निंदा में स्तुति रहे स्तुति निन्दा माहिं।
अन्य वस्तु की स्तुति अन्य वस्तु के माहि॥

३—जमुना तू अविवेकिनी कौन लियो यह ढंग।
पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग॥

यहां श्री जमुनाजी की निन्दा कथन करके पापियों के उद्धार रूप जो प्रशंसा है वह झलकती है अतः निन्दा में स्तुति हुई।

किसी की स्तुति में अन्य की स्तुतिः—

१-"जासु दूत बल बरण न जाई। तेहि आये पुर कौन भलाई"॥

२—"या वृन्दावन विपिन में बड़ भागी मम कान।
जिन मुरली की तानि सुनि किय हरखित अंग आन"॥

३—"उस कारीगर के लिये क्या कहा जाय
जिसने ये सुन्दर पुष्प खिलाये हैं"

किसी की निन्दा में अन्य की निन्दाः—

१—"जु हरि हमारो जीव निज, ताहि लै चल्यो दूर।
क्रूर सु जिहि इह क्रूर को नाम धर्यो अक्रूर॥"

२-"या मुरलीधर की मुरली अधरान धरी अधरा न धरौंगी।"

अर्थात् मुरलीधर की होठों से लगाई हुई मुरली को मैं अपने होठों पर न धरूंगी। यहाँ मुरली के व्याज से मुरलीधर की निन्दा झलकती है।

इसी प्रकार किसी की निन्दा में अन्य की स्तुति आदि का कथन होता है।

———

*स्मरण ।

किसी अन्य की वैसी ही शोभा देखकर पूर्व में अनुभव की हुई अथवा देखी हुई वस्तु या प्राणी का स्मरण हो "स्मृति" अलंकार होता है परन्तु जहाँ सादृश्य वस्तु देखे विना स्मृति मात्र हो वहाँ अलंकार नहीं होता ।

" जो होता है उदित नभ में कौमुदी-कान्त आके ।
या जो कोई कुसुम विकसा देख पाती कहीं हूं ॥
लोने लोने हरित दल के पादपों को बिलोकि ।
प्यारा प्यारा विकच मुखड़ा, है मुझे याद आता ॥"

यहाँ आकाश के कौमुदी-कान्त को अथवा खिले पुष्प को वा लोने २ हरित दल को देख कर पूर्व देखा हुआ कृष्ण का मुँह स्मरण हो आता है ।

'प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा । सिय-मुख-सरिस देखि सुखपावा ॥'

*भ्रम

किसी और बात में किसी दूसरी बात का भ्रम होना ।

" जानि कञ्ज सर बिच मुखहिं चिपटे अलिगन माय "

यहाँ अलिगणों के मुख पर कमल की भ्रान्ति हुई—

किंशुक मुकल सु जानि कै परत भौंर शुक-तुण्ड ।
सोऊ जामन भ्रान्त करि धरन चहत अलि-मुण्ड ॥

---

* सुमिरन देखे काहु के सुधि आवे जह खास ।
सुधि आवे वा बदन की देखे सुधा-निवास ॥ (का० प्रकाश)

* भ्रान्ति और की और ही निश्चय अव अनुमान ।
तुम सँग फिरत चकोर है बदन सुधा-निधि जान ॥ (का० प्रकाश)

यहाँ तोता की चोंच को ढाक की अध-खिली कली समझ कर उस पर भौंरा गिरते हैं और तोता, भौंरा को जामुन जान कर चोंच से उसे पकड़ना चाहता है।

"कपि कर हृदय विचार दीन मुद्रिका डार तब।
जानि अशोक अँगार, सीय हर्ष उठि कर गहेऊ ॥"

यहाँ मुद्रिका की चमक से अग्नि की भ्रान्ति सीताजी को हुई।

+सन्देह

जहाँ "कै तो यह है कै वह" ऐसा कह कर सन्देह किया जाय, वहां सन्देहालंकार होता है।

इसके दो भेद हैं। एक में जिस वस्तु का सन्देह होता है उसके भेद करने वाले धर्म का कथन करके मध्य में या अन्त में निश्चय कर लिया जाता है; जैसे--

" कैधों यह रमा ! छीर सागर ते उपजी न,
कैंधों यह गिरजा ! न गिरते जनम है।"

"क्षीर सागर ते उपजी न" व न गिर ते जनम है, आदि भेद करने वाले धर्म के साथ "भेदोक्ति संशय" है।

जिसमें भेदोक्ति धर्म न कहा जाय वह "अनुक्तिभेद संशय" है।

" जान्यो न परत ऐसो काम न करत कोऊ,
गंधर्व, देवा है कि सिद्ध है कि सेवा है।"

+ "निहचै होत नहीं है जहाँ। कहि संदेह अलंकृत तहाँ ॥"(भाषा भूषण)

"सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।
सारी ही की नारी है, कि नारी ही की सारी है॥"

अपह्नुति

अपह्नुति का अर्थ छिपाना है इसके छः भेद हैं। पाँच में कोई चिह्न नहीं होता है परन्तु एक में 'मिस' शब्द होता है।

*शुद्धापह्नुति

सच्ची बात को छिपाकर अन्य बात कही जाय, वहाँ शुद्ध अपह्नुति होती है।

" यह न मारुत है, बर व्याल है,
न यह आतप है, करवाल है।
यह न भूमि, चिता सुविशाल है,
तप नहीं, यह काल कराल है॥"

यहाँ मारुतादि का निषेध करके व्यालादि का स्थापन है।

"पहिरे श्याम न पीत पट घन में बिज्जु बिलास"

यहाँ श्याम को घन तथा पीत पट को बिज्जु-छटा ठहरा कर असली बात को छिपाया है।

० कैतव अपह्नुति।

जहाँ प्रत्यक्ष निषेध न करके छल, व्याज वा मिस पदों द्वारा अपह्नुति हो; जैसे—

---

*शुद्धापन्हुति जहँ धपै शुद्ध वस्तु छिपि जात।
यह नहिं शशि तो है कहा नभ गंगा जलजात॥ (पद्माभरण)

० जहाँ और के व्याज तें करैं जु कारज और।
तहाँ कैतवापह्नुति बरनत कबि सिरमौर॥ (पद्माभरण)

१-"रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन दिखाया।"

२—"बजत बीन ढफ बांसुरी रह्यो छाय रस राग।

मिस गुलाब के तियन पै पिय बरसत अनुराग॥"

+हेतु अपह्नुति।

जहाँ युक्तिपूर्वक शुद्धा अपह्नुति कारण सहित कथन हो।

"शिव सरजा के कर लसै सो न होय किरवान।

भुज-भुजगेश भुजंगिनी भखति पौन-अरि-प्रान॥"

यहाँ पर कारण बता कर किरवान को भुजङ्गिनी ठहराया है किरवान का निषेध है अतः हेत्वापह्नुति है।

"ये नहिं फूल गुलाब के दाहत हिय जु हमार।

बिनु घनश्याम अराम में लागी दुसह दवार॥"

यहाँ गुलाब के फूलों का युक्तिपूर्वक निषेध कारण सहित कथन है।

❀पर्यस्तापह्नुति (फेंका हुआ)

जहाँ किसी वस्तु में उसके धर्म का निषेध करके अन्य वस्तु में वह कथन किया जाय; यथाः—

"नहिं धन धन है, परम धन तोषहिं कहहिं प्रवीन।"

किसी २ अपह्नुति में हेतु और पर्याय दोनों होते हैं।

\+ वस्तु दुराइये युक्ति सों हेतु अपह्नुति सोय।
तीव्र चन्द्र नहिं रैनि रवि बड़वानल ही जोय॥ (भाषा भूषण)

❀ अनतहि के गुन अनतहि लहिये।
पर्यस्तापह्नुति सो कहिये॥ (अलंकार दर्पण)

ह न सुधा यह है सुधा संगति साधु-समाज ।

यहाँ सुधा में सुधा धर्म का निषेध है और साधु-समाज में उस धर्म का आरोप है।

"मीन में नहिं प्रीति सजनी पंक में नहि प्रेम ।
एक गति मति एक सजनी भरत ही में नेम ॥"

भ्रान्तापन्हुति

और बात की शंका होते ही जहां भ्रम शीघ्र दूर किया जाय:—*

१—" चन्द न चन्दन-बिन्दु यह माँग न सुरसरि धार ।
त्रिय न नैन मोती लसैं मैन मैं न हर नार ॥"

२-"कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराऊ। लूक न असनि केतु नहिं राऊ॥
ये किरीट दशकंधर केरे। आये बालि तनय के प्रेरे" ॥

छेकापन्हुति ।

जहाँ दूसरे की शंका का निरोध करके सच्ची बात छिपाई जाय ।

"तिमिर-वँश-हर अरुन-कर आयो सजनी भोर ।
सिव सरजा, चुप रहि सखी, सूरज-कुल सिरमौर ॥"

---

* बच सों परको भ्रम नसै भ्रान्ति अपन्हुति जान ।
दहत प्राण तन छिप कहा नहिं सखि बिरह कृसान ॥ (पद्माभरण)

ॐ जहाँ और की शंका कहि के सांची बात छिपावे ।
छेकापन्हुति अलंकार सो ऐसी भाँति कहावे ॥ (अलंकार दर्पण)

सखी के प्रति सखी की उक्ति—तैमूर के वंश का नाश करने वाला, लाल कमल से हाथों वाला आया; दूसरी ने कहा शिवाजी, पहली ने कहा चुपरह, सूर्य।

"आंखें अति सीतल भई दीनों ताप निवारि।
क्यों सखि पीतम को लखे ना सखि सासिहिं निहारि"

यहाँ सखी ने पूछा कि पीतम को देख कर छाती ठण्डी हुई, तब उत्तर में 'चन्द्रमा को देख कर' कह के उत्तर दिया। अर्थात् सच्ची बात छिपा दी।

दीपक।

जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) अप्रस्तुत (उपमान) दोनों का एक धर्म कथन किया जाय।

"संग ते यती कुमंत्र ते राजा,
मान ते ज्ञान पान ते लाजा।
प्रीति प्रणय बिनु मद तें गुनी,
नासहि बेगि नीति अस सुनी॥"

यहाँ उपमेय 'कुमंत्र ते राजा' और संग ते यती आदि उपमानों का एक ही धर्म 'नाशहि बेगि' कथन किया गया है।

---

१ तैमूरवंश नाशक अथवा तम नाशक २ अरुण हाथों का वा अरुण किरणों का।

"एक एक में धरम ते तुल्य जोग्यता होय।
वर्न अवर्नहि ते कहै दीपक सब कवि लोय॥"

×मालादीपक।

पूर्व कथित वस्तु पिछली कही हुई वस्तु का उत्कर्ष दिखावे (कहे)

"रस सों काव्यरु काव्य सों सोहत वचन महान।
वाणी ही सों रसिकजन तिन सों सभा सुजान॥"

पूर्व से उत्तरोत्तर उत्कर्ष कथन किया गया है।

"जग जपु राम राम जपु जेही"

(दीपक और एकावली मिल कर माला दीपक होता है)

---

*कारक दीपक (करने वाला)

जहाँ बहुत सी क्रियाओं में कारक अर्थात् कर्ता का एक ही बार कथन हो; जैसे—

"मधुर मञ्जु छवि पुंज छटा छिरकति वन कुञ्जन।
चितवति रिझवति हँसति हँसति मुसकात हरति मन॥

यहाँ पर चितवति रिझवति हँसति इत्यादि सब का एक ही प्रकृति सुन्दरी कर्ता है।

"लेत चढ़ावत खेंचत गाढ़े, काहु न लखा रहे सब ठाढ़े।"

यहाँ राम कर्ता ने लेत इत्यादि सब क्रियाएँ कीं।

× माला दीपक पूर्व पद उत्तर प्रति उपकार।
रस सों काव्यरु काव्य सों सोभा वचन अपार॥ (का० प्रकाश)

*कारक दीपक एक में क्रमते भाव अनेक (भाषा रहस्य)

जहाँ गुण और क्रियाओं का कथन क्रमपूर्वक साथ हो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है परन्तु कारक दीपक में यह नियम नहीं है।

आवृत्ति दीपक

जहाँ पर एक ही अर्थ वाले भिन्न पदों की आवृत्ति, भिन्न अर्थ वाले एक से पदों की आवृत्ति अथवा एक ही अर्थ वाले एक से पदों की आवृत्ति हो, वहां आवृत्ति दीपक होता है।

पदावृत्ति—(भिन्नार्थक पदों की आवृत्ति)

" दीन जानि सब दीन नहिं कछु राख्यो बरिबर "

यहाँ 'दीन' शब्द एक जगह दुखिया और दूसरी जगह देने के अर्थ में आया है।

" हे विधि मिलै कवन विधि बाला "

अर्थावृत्ति (एक ही अर्थ में भिन्न पदों की आवृत्ति)

"मिल्यो हृदय को अमित सुख पायो अधिक प्रमोद।"

" मिली हृदय को शान्ति अति पूजी मन अभिलाष "

दीपक आवृत्ति तीन विधि आवृत्ति पद की होय।
पुनि है आवृति अर्थ की दूजे कहिये सोय॥
पद और अर्थ दुहुन की आवृति तीजे लेखि।
घन बरसे है री सखी निसि बरषै है देखि॥
फूले वृक्ष कुटुम्ब के केतक विकसे आइ।
मत्त भये हैं मोर अरु चातक मत्त सराइ॥ (भाषा भूषण)

" कूजहिं कोकिल गूँजहिं भृंगा "

यहाँ एक ही अर्थ के सुख और प्रमोद मिली और पूजी कूजहिं और गूँजहिं पद आये हैं

पदार्थावृत्ति (एक ही पद की एकं ही अर्थ में आवृत्ति)

"तप 'है न' ज्ञान 'है न' शक्ति 'है न' ध्यान 'है न'
भक्ति 'है न' मान हिये कैसे मातु पाऊं तोय ।"

यहाँ है न, की एक ही अर्थ में आवृत्ति है

" भले भलाई पै लहहिं लहहिं निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच " ॥

यहाँ लहहिं तथा सराहिय दो बार एक ही अर्थ में आये हैं ।

×प्रतिवस्तूपमा

उपमान और उपमेय वाक्यों का पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा एक धर्म कहा जाय *।

" भ्राजत भानु प्रताप सों, राजत धन सों सूर "

भ्राजत और राजत एक ही धर्म दोनों वाक्यों में शब्द भेद से कथित है ।

×प्रतिवस्तूपमा धर्म सम जुदे जुदे पहचान ।
सोहत भानु प्रताप सौ लसत सूर धनुवान ॥ (का० प्रकाश)

* उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य का एक ही साधारण धर्म भिन्न शब्दों द्वारा कथन हो अर्थात् उपमेय उपमान वाक्य हों । यद्यपि दीपक अर्थावृति में भिन्न शब्दों द्वारा एक ही धर्म कथन होता है परन्तु उपमा उपमेय वाक्य का नियम नहीं। अर्थान्तरन्यास में सामान्य विशेष भाव से समर्थन किया जाता है ॥

"मद-जल धरन द्विरद बल धारत, बहु जल धरन जलद छवि साजै
पहुमि धरन फनि-नाथ लसत अति तेज धरन ग्रीपम-रबि छाजै।
खग्ग धरन शोभातँह राजत रुचि भूषण गुन धरन समाजै
दिल्ली दलन दखिन दिसि थम्मन ऐंड़ धरन शिवराज बिराजै"।

यहाँ "धारत और साजै" लसत और छाजै आदि भिन्न-शब्दों में उपमान और उपमेय वाक्यों का एक ही धर्म कथित है।

+ दृष्टान्त

जहाँ दोनों वाक्यों का भिन्न भिन्न अर्थ विम्वप्रतिविम्व भाव से कहा जायः—

'सहृदय जनही काव्य का लेते हैं आनन्द।
पीते हैं अलि वृन्द ही अमल कमल-मकरंद'॥
'रहिमन अति सुख होत है बढ़त देख निज गोत।
बड़री आँखिन को निरखि आँखिन कों सुख होत'॥
'कुलहि प्रकासै एक सुत नहिं अनेक सुतनिंद।
चन्द्र एक सब तम हरै नहिं तारागन वृन्द'॥
'शिव! औरंगहि जिति सकै और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिन आनन घालै घाव'॥
'निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचो नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान'॥

+जहाँ विम्ब प्रतिविम्ब सम जुगल वाक्य को धर्म।
ताहि कहत दृष्टान्त हैं जे कवि कविता वर्म॥ (पद्माभरण)

यहाँ छंद के प्रथम वाक्य और द्वितीय वाक्य में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है और जो वाचक शब्द द्वारा प्रगट नहीं किया गया है अतः दृष्टान्त है।

प्रथम निदर्शना।

'जो' 'सो' 'जे' 'ते' पदों द्वारा दो समवाक्यों के अर्थ की जहाँ एकता दिखाई जाय वहाँ प्रथम निदर्शना होती है:—

" जो मृदु वच दातार को सु पुरट माँहि सुबास।
ससि महँ लसत जु जोन्ह-छवि नरमें सुमति प्रकाश।"

दातार के मीठे वचन सोने में सुगंधि है, नर में सुमति होना चन्द्रमा में प्रकाश है।

"साहन सों रन मांडिवो कीवो सुकवि निहाल।
शिव सरजा को ख्याल है और न कौ जंजाल॥"

दूसरी निदर्शना।

जहाँ उपमेय के गुण को उपमान अथवा उपमान के गुणों को उपमेय धारण करे वहाँ दूसरी निदर्शना होती है:—

१—*"अस कहि फिरि चितये तिहि ओरा*
सिय मुख ससि भये नैन चकोरा।"

२—*पंकज रेनु सोह अस धरनी*
नीति निपुण नृप की जस करनी

३—*जल संकोच विकल भइ मीना, अबिबुधि कुटुम्बी जिमि धनु हीना।*

४—*"सो तनु धरि हरि भजहिं न जेनर, होय विषय-रत मन्द मन्दतर।*
कंचन काँच बदलि सठ लेहीं, करते डारि परस-मणि देहीं।"

५- "तुम वचनन की मधुरता रही सुधा में छाइ ।

तीसरी निदर्शना

जो अपनी अवस्था से औरों को उपदेश करे । सदर्थ और असदर्थ में इसके दो भेद हैं ।

सदर्थ में:—

दै सुफूल फल दल जु द्रुम यह उपदेसत ज्ञान ।
लहि सुख सम्पाति कीजिए आए कौ सन्मान ॥"

असदर्थ में:—

" आंधी से आपस में लड़कर आग स्वयं उपजाते हैं ।
बाँस-वंश फिर उससे जल कर भस्म शेष हो जाते हैं ।
आपस में लड़ने के फल को सब को प्रकट दिखाते हैं ।
और दूर रहना दुष्टों से सोदाहरण सिखाते हैं ॥"

---

*कहिये त्रिविधि निदर्शना वाक्य अर्थ सम दोय ।
एक क्रिया पुनि और गुन और वस्तु में होय ॥ (भाषा भूषण)

जु सम वाक्य जुग अरथ को करब एकता रोप ।
'जो' 'सो' पदनि निर्दशना ताहि कहत करि चोप ॥

वर्न धर्म जु अवर्न्य में धर्येजुवर्न्यहुमाहिं ।
धर्रै अवर्न्यहु को कहत विय निदर्शना ताहिं ॥

जु निज अवस्था सों करै भलो बुरो फल बोध ।
सो सदर्थ असदर्थयुत यों निदर्शना सोध ॥ (पद्माभरण)

*सहोक्ति ।

"सह" शब्द के साथ जहाँ एक ही वाक्य दो अर्थों को पूरा करे ।

१—"पिय गवन के संगही, गयो चाहत प्रान"

२—"विद्या ही के साथ भयो नमृता को उदय"

३—"कीरति अरिकुल संगही जलनिधि पहुँची जाय"

४—नाक पिनाकहि संग सिधाई ।

यहाँ संग शब्द के साथ एक ही क्रिया में निर्णय है ।

विनोक्ति

जहाँ पर प्रस्तुत वस्तु किसी के बिना 'हीन वा रम्य हो वा कही जाय, वहाँ "विनोक्ति है; जैसे—सील बिना ससि-मुखी सोभा न धरति है ।

मानसकार ने दो प्रकार की माना है:—

प्रथम १—"सभा खलों के बिना शोभित होती है"

२—"बिधु-बदनी सब भांति संवारी, सोहन न बसन बिना बरनारी ।"

३—"श्याम गौर किमि कहों बखानी, गिरा अनयन नयन बिनुवानी ॥"

४—"जीवन व्यथा है एक बिना स्वावलम्ब के"

जहाँ अन्य के बिना शोभा हो अथवा शोभा न हो ऐसे दो प्रकार के भेद भी माने हैं ।

---

*"होत सहोक्ति जो साथही बरनत सुनत सुहाय
कीरति अलि कुल संगही जलनिधि पहुंचो जाय"
"है विनोक्ति द्वै भाँतिकी प्रस्तुत कछु बिन छीन ।
अरु सोभा अधिकी लहै प्रस्तुत कछु ते हीन" ॥ (मानस दर्पण)

"प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी । तैसेही नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
द्वितीय —" संत हृदय जस गत मद-मोहा "

+समासोक्ति (संक्षेप कथन)

कहाँ प्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन करने में श्लिष्ट विशेषणों की समता के बल से "अप्रस्तुत वृत्तान्त का स्फुरण हो वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।"

" चन्द्रबिम्ब पूरण भये क्रूरकेतु हठ दाप ।
बलसों करिहै ग्रास यहि जेहि बुध रक्षक आप" ॥

चन्द्र, केतु और बुध श्लिष्ट विशेषण हैं चन्द्र का दूसरा अर्थ चन्द्रगुप्त, केतु का राक्षस मंत्री और बुध का अर्थ नीतिज्ञ चाणक्य है।

प्रस्तुत अर्थ यह है-चन्द्रगुप्त पूर्ण विभव को प्राप्त हुआ; राक्षस मंत्री जीतना चाहता है, जिसकी कि नीतिज्ञ चाणक्य रक्षा करते हैं।

कहीं २ श्लिष्ट न हो तो भी दूसरा अर्थ भासित होता है।

"लोचन मगु रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥

यहाँ यह भासित होता है कि चंचल व्यक्ति को रोकने के लिये किवाड़ बन्द कर देते हैं।

+ "समासोक्ति प्रस्तुत विषै अप्रस्तुत को ज्ञान ।
कर पसारि ससि मालतिहि परसत कलानिधान ॥" (पद्माभरण)

नोट—श्लेष में जितने अर्थ हों सभी प्रस्तुत समझे जाते हैं, परन्तु समासोक्ति में केवल एक ही इच्छित अर्थ मुख्य है और अर्थ भासमान होते रहते हैं।

"*सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप*।

यहाँ इस पद से अप्रस्तुत वीर की प्रशंसा लक्ष्य है।

व्यतिरेक

उपमान से उपमेय में कोई बात विशेष या न्यून दिखाई जाय*:—

"*साधु ऊंचे सैल सम किन्तु प्रकृति सुकुमार*"।

साधु पुरुष ऊँचे तो शैल के समान हैं किन्तु उनकी प्रकृति कोमल है और पर्वत की कठोर है।

---

* "व्यतिरेक जु उपमानते उपमें अधिको देख।
मुख है अम्बुज सो सखी मीठी बात विशेष॥"

कवि दूलह ने तीन प्रकार का कथन किया है—

"उपमान उपमेय में विशेष 'व्यतिरेक' सो,
अधिक न्यून सम त्रिविध बखानो है।
कहै कवि दूलह निहारे चकचौंधी लागे,
कुन्दन सो रूप पै सुगंध सरसानो है।
सुन्दर सरस सुकुमार मुख कमल सौ,
रवि को उदै विचार जुदै कुम्हिलानो है।
घनश्याम दो में वों जगर मगर होति,
दामिनी और कामिनी कहँई भेद जानो है"॥

(कविकुल कण्ठाभरण)

२—रे नृप, कल्पवृक्ष से तेरे हाथ में यह विशेषता है कि वह करण (कान) को भूषित करता है और यह (तेरे हाथ) करण (दानी करण) को तिरस्कृत करते हैं।

३—"विधि तें कवि सब विधि बड़े या में संसय नाहिं।
पट गुन विधि की सृष्टि में नव गुन कविता माहिं॥

---

*परिकर

किसी विशेष अभिप्राय के कारण विशेषणों का जहाँ कथन हो अर्थात् क्रिया से सम्बन्ध रखने वाला विशेषण हो।

"पिनाक पाणी महादेव को कुसुमायुध मैं करूँ अधीर।"

यहाँ पिनाक नाम कठोर धनुष है जिस शिव के हाथ में उसको कोमल कुसुमों के आयुध वाला मैं धैर्यच्युत करूँगा।

यहाँ पिनाकपाणी और कुसुमायुध! साभिप्राय विशेषण हैं।

"वृन्दावन चन्द नद नँद घनश्याम देखो, आन
इन आँखिन की तपत बुझाई है॥"

यहाँ "वृन्दावन चन्द" आदि साभिप्राय विशेषण हैं।

"है परिकर आशय लिये जहाँ विशेषण होय।" (भाषा भूषण)

"साभिप्राय सहित विशेषण जहाँ ही होय तहाँ परिकर कवि दूलह गनाई है।
अभिप्राय सहित विशेष जहाँ बरनिये परिकर अंकुर को ऐसो रूप ध्याई है॥"

(कविकुलकण्ठाभरण)

* परिकरांकुर

साभिप्राय विशेष्यों से विशेषणों का जहाँ कथन हो अर्थात् किया का अभिप्राय विशेष्य से हो:—

१—" *देत चतुर्भुज देव हैं चार पदारथ आप* "

विष्णुजी चारों भुजाओं से चार पदार्थ देते हैं, अतः चतुर्भुजविशेष्य साभिप्राय है।

२—" *शेष न तुव गुन कहि सकै।* "

३—"*सुनिय विनय मम विटप असोका।*"

"*सत्य नाम करु हरु मम सोका।*"

अर्थात् तुम अशोक हो मुझे भी अशोक करो।

+ श्लेष (अनेकार्थवाची)

जहां एक पद में अनेक अर्थ हों:—

" *चरण धरत चिन्ता करत भावत नींद न सोर।*

सुवरण को ढूंढत फिरत कवि भावुक अरु चोर॥ "

इसके तीन अर्थ हैं—

कवि पक्ष में:—चरण (पद) रखने में सोचते हैं, नींद और शोर नहीं भाता, सुवरण (सुंदर अक्षर) को ढूंढते हैं।

भावुक—(सौंदर्य उपासक) पक्ष में—

---

* परिकर अंकुर नाम, साभिप्राय विशेष जहँ।
नेक न मानत बाम सुधेहु पिय के कहे॥ (का० प्रभा०)

+ प्रस्तुत—जिसका वर्णन करना हो। अप्रस्तुत—जिसका वर्णन न करना हो।

सुन्दर प्रकृति की छटा देखते हैं, उसमें एक एक चरण (पैर) रखने में सोचते हैं—नींदादिक नहीं भाती।

चोर पक्ष में—सोना ढूढ़ते हैं, पर रखने में चिन्ता करते हैं, नींदादि नहीं भाती।

२—"*रहिमन पानी राखिये बिनु पानी सब सून।*
पानी गये न ऊबरे मोती मानस चून॥"

३—"*साधु-चरित शुभ सरिस कपासू।*
निरस विसद गुनमय फल जासू॥"

इस पद्य में साधु चरित तथा कपास का अर्थ घटित होता है। अर्थात्—साधुओं का चरित निरस (रूखा) विशद (पाप रहित) और गुण वाला होता है। तथा कपास पक्ष में सूखा, उजला और धागे वाला होता है।

———

* अप्रस्तुत प्रशंसा।

प्रस्तुत के वर्णन करने के लिये अप्रस्तुत का ऐसे ढंग से वर्णन किया जाय कि प्रस्तुत (इष्ट बात) स्पष्ट सूचित हो

इसके ५ भेद हैं-कारणनिबंधना, कार्यनिबंधना, सारूप्य-निबंधना, सामान्य निबंधना और विशेष निबंधना।

कारण निबंधनाः—

जहाँ प्रस्तुत कारण के द्वारा अप्रस्तुत कार्य इष्ट हो।

---

* अप्रस्तुत विरतान्त महँ जहँ प्रस्तुत को ज्ञान।
अप्रस्तुत परसंस सो पञ्च प्रकार प्रमान॥ (पद्माभरण)
अप्रस्तुति कारनहु तें फुरै जु प्रस्तुत काज।
यों कारन सु निबन्धना भाषत हैं कबिराज॥ (पद्माभरण)

"कोउ कह जब बिधि रति मुख कीना,
सार भाग शशि कर हर लीना।
छिद्र सों प्रगट इन्दु उर माहीं,
तेहि मगु दीसति नभ परछाहीं ॥"

यहाँ रति के मुख-सौन्दर्य रूपी कार्य का वर्णन प्रस्तुत है और "चन्द्रमा का सार-भाग लेकर" जो रति का मुख बनाने का अप्रस्तुत हेतु है उसका वर्णन है।

* कार्य निबन्धना:—

जहाँ अप्रस्तुत कार्य के द्वारा प्रस्तुत कारण कहना इष्ट हो।

" राधिका को बदन सम्हारि बिधि धोये हाथ,
ताते भये चन्द कर झारे भये तारे हैं।"

यहाँ राधिका के मुख की शोभा कथन इष्ट है और चन्द्तारों का हेतु होना कल्पित है। कार्य का वर्णन करके कारण कथन किया है।

" जो या तिय की गति निरखि हंसहु तजहु गुमान।
जा अँग की सुकुमारता मालति होय पखान ॥"

यहाँ पहिले पद में गति की प्रशंसा करना, तथा दूसरे पद में अंग की प्रशंसा करना धेय है, जो स्पष्ट न कह कर 'हंस अपनी चाल का गुमान तजे' तथा 'मालती पत्थर होय' यह कार्य कथन किया है।

---

*"अप्रस्तुत कारजहु तें प्रस्तुत कारन ज्ञान।" (पद्माभरण)

×सारूप्य निबन्धना अथवा अन्योक्तिः—

जहाँ प्रस्तुत के तुल्य अप्रस्तुत का कथन हो—

"अन्धकार मय होगया यह संसार समस्त ।

चन्द्र सूर्य दोनों अहो हुए हमारे अस्त ॥"

'हमारे' विशेषणी भूत सम्बन्ध से यहाँ सुन्द और उपसुन्द नामक दैत्यों का कथन किया जाता है ।

" मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली,

जिये कि लवन पयोधि मराली ।"

यहाँ अप्रस्तुत मराली के सहारे प्रस्तुत सीता का वर्णन है

" भौंरा ये दिन कठिन हैं दुख सुख सहो सरीर ।

जब लग फूले न केतकी, तब लग विलम करीर ॥"

यह अप्रस्तुत भौंरे के सहारे किसी प्रस्तुत दुःखित जन का वर्णन है ।

" अति नीचहिं हम कूप ! तुम, खेद करहु अस नाहिं ।

सजल हृदय बहु होंन सों, औरन के गुन माहिं ॥"

"केसर युत सतपर्न में गये जासु दिन बीत ।

सो पट-पद यह कुटज में कियो होय किम प्रीत ॥"

"छीर सलिल बिलगान में तुम यदि मंद मराल ।

अन्य कौन करिहै सदा बंस नियम प्रतिपाल ॥"

"धोखे दाड़िम के सुआ, गयो नारियल खान ।

स्रम खाई पाई सजा फिर लाग्यो पछितान ॥"

×प्रस्तुत अप्रस्तुत हु को है जहँ धर्म समान ।
सो सारूपनिबन्धना पदमाकर ठिक ठान ॥ (पद्माभरण)

यहाँ अप्रस्तुत कूप, सूआ मराल आदि के कथन में किसी अन्य प्रस्तुत का वर्णन इष्ट है।

इसके तीन भेद हैं:--

श्लेषहेतुक, श्लिष्टविशेषण और सदृश्यमात्र अथवा अन्योक्ति।

"पुरुषपनेहू ते नसत याचत जाहि जहान।
तदपि उधारहिं जग प्रगट यह पुरुषोत्तम बान॥"

यहाँ पुरुषोत्तम श्लेष वाची है विष्णु तथा उत्तम मनुष्य ही की प्रसंशा होती है।

×विशेष निबन्धना—जहाँ सामान्य प्रस्तुत हो विशेष का वर्णन है।

"हनूमान बहु गिरि धरे, गिरिधर कहे न कोय।
साईं एकहि गिरि धरयो गिरधर गिरधर होय॥"

यहाँ इस सामान्य के वर्णन के लिये छोटे मनुष्य का बहुत कार्य करने पर भी नाम नहीं होता और बड़े का थोड़े ही काम से; इस विषय को पुष्ट करने के लिये हनूमान और श्रीकृष्ण के विशेष वृत्तान्त को कहा है।

"धरि कुरंग को अंक, मृगलांछन ससि नाम भो।
मृग-जन हतत निसंक, नाम मृगाधिप हरि लह्यो॥"

नम्रता से दोष तथा क्रूरता से प्रसिद्धि होती है, इस सामान्य बात को सिद्ध करने के लिये विशेष रूप से चन्द्रमा और सिंह के उदाहरण दिये गये हैं।

× "अप्रस्तुत सु विशेष तें जहँ सामान्य फुरैहिं।" (पद्माकर)

* सामान्य निबन्धना—

विशेष प्रस्तुत के लिये सामान्य का वर्णन हो, अर्थात् सामान्य के कथन से विशेष का ज्ञान हो।

"होते हैं तेजस्विजनों के कार्य सफल सब अपने आप।"

"दैत्य राज सुन्द, इस सामान्य वाक्य के सहारे यह विशेष कथन करता है कि तेजस्वी होने से मेरे सब काम सिद्ध होंगे"

" धरैं न मन में सोच वे बैर प्रबल सों ठानि।
सोवत आग लगायके सदन मांझ पट तानि॥"

बलवान से बैर करके निश्चिन्त होना आग लगाकर घर में सोना है। यहाँ सबल की प्रशंसा से, निर्बल के बैर करने के स्वभाव की निन्दा की है।

"बड़े प्रबल सों बैर करि करत न सोच बिचार।
ते सोवत बारूद पर पट में बाँधि अंगार॥"

इस दोहे के सामान्य भाव में यह प्रस्तुत भाव है कि बड़े प्रबल से बैर न करो।

× प्रस्तुताङ्कुर।

प्रस्तुत वर्णन में अन्य प्रस्तुत आभासमान हो।

---

* "अप्रस्तुत सामान्य ते प्रस्तुत फुरै विशेष।" (पद्माभरण)

×"प्रस्तुत अंकुर है किये प्रस्तुत में प्रस्ताय।
कहाँ गयो अलि केवरे छांड़ि सुकोमल जाय॥" (भाषाभूषण)

प्रस्तुत करि प्रस्तुति फुरै प्रस्तुत अङ्कुर होय।
तजि कमलिनि अलि अनत कहुँ तू आयो निसि खोय॥ (पद्माभरण)

"सांई नदी समुद्र सों मिली बड़ापन जानि ।
जात नास भयो नाम को मान महत की हानि ॥

यहाँ अप्रस्तुत नदी कें वर्णन में किसी क्षुद्र का अस्तित्व बड़े मनुष्य के साथ मिलने से नष्ट हुआ प्रस्तुत अर्थ भी है,

"रे विकसित अरविन्द ! स्रवत मकरन्द तिहारी ।
कछु कछु चाटत, गूंजि रहे मधु मधु-व्रत-धारी ॥
तुव सौरभ को दिसि दिसि में करि रह्यो प्रचारा ।
निराकांक्ष है अन्य बन्धु यह वायु तुम्हारा ॥"
"जिन दिन देखे वे कुसुम गई जुबीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब में अपत कटीली डार ॥"

अरविन्द और भौंरा के प्रस्तुत वर्णन में किसी मनुष्य को भी उपालम्भ प्रस्तुत है ।

विरोधाभासालंकार ।

जहाँ वास्तव में विरोध न होने पर भी विरोध दिखाई दे ।

जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के कारण यह अनेक प्रकार का होता है—

"कहत विरोधाभास तहँ झूंठो जहाँ विरोध ।"
"जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहिं निज बोध ॥" (पद्माभरण)
"भासे जबै विरोध तौ तबै विरोधाभास ।" (मानस रहस्य)

"श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषण तेरे अरुन्न प्रताप सफेद लखे कुनवा नृप सारे॥
साहि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचंभव होत बड़ो तिन होंठ गहे अरि जात न जारे॥"

'सेत से कारो होत है'–गुण का गुण से विरोध।
'अरुण से सफेद है'–गुण से गुण का विरोध॥
'कृशानु से गरे है'–द्रव्य से क्रिया का विरोध।
'होंठ गहे जारे न जात'–क्रिया से क्रिया का विरोध है॥

"मोर पखा 'मतिराम' किरीट से कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसिक्यान मनोहर कुंडल डोलन में छबि छाई॥
लोचन लोल बिसाल बिलोकन को न बिलोकि भयो बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा, कहीं मीठी लगे अँखियान लुनाई॥

'यहां लुनाई मीठी लगे'–द्रव्य से क्रिया का विरोध है।

"बैन सुन्यो जब ते मधुर तब ते सुनत न बैन।
नैन लगे जब ते लखो तब ते लगत न नैन॥"

जब से श्रीकृष्ण प्यारे के वचन सुने तब से किसी बात को न मानना तथा जब से उनका दर्शन हुआ है तब से नींद नहीं आना यह स्पष्ट है परन्तु दोहा में पढ़ने से विरोध सा जान पड़ता है।

* पर्यायोक्ति ।

जहाँ कोई बात व्यंग से (स्पष्ट न कह कर हेर फेर से) कही जाय या किसी बहाने से काम साधा जाय वहाँ पर्यायोक्ति होती है ।

प्रथम भेदः—

जहाँ व्यंग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय ।

"मांगी नाव न केवट आना, कहा तुम्हार मरम मैं जाना ।
चरन कमल रज को सब कहहीं ! मानुष करनि मूरि कछु अहहीं ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई, पाहन ते न काठ कठिनाई ।
जौ प्रभु अवसि पार गा चहहू, तौ पद पदम पखारन कहहू ॥"

यहाँ भक्त केवट "चरण धोकर पीना चाहता है" परन्तु अपनी इच्छा को सीधे न कह कर इस व्यंग से कहता है कि तुम्हारे चरणों में मनुष्य बनाने वाली शक्ति है, इसलिये चरणों की धूल को धोकर नाव पर चढ़ाऊँगा, नहीं तो मेरी नाव उड़ जायगी ।

"सीता हरन तात जनि कहउ पिता सन जाय ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दसानन आय ॥"

यहाँ राम ने जटायु से स्पष्ट रावण का मारना नहीं कहा किन्तु हेर फेर के साथ ।

---

* 'परजायोक्ति प्रकार द्वै कछु रचना सों बात ।
मिसकरि कारज साधिये जो हित चित्तहिं सोहात ॥" (मानस रहस्य)

द्वितीय भेदः--

जहाँ बहाने से कार्य हो—

"भूखे हैं मृगबाल, ढूंढ़त हैं निज माय को।
चलो सखी उठि हाल, दीजे तिनहिं मिलाय अब॥"

शकुन्तला को राजा से बातें करने के लिये एकान्त में छोड़ सखियां बहाने से चली गयीं।

इसी प्रकार।

"लखन हृदय लालसा विसेषी, जाय जनकपुर आइय देखी"

आक्षेप

(दोष निकालना या बाधा डालना)

जहाँ किसी कार्य में दोष लगा कर बाधा डाली जाय वहाँ आक्षेपालंकार होता है। आक्षेप तीन प्रकार का होता है:-

आक्षेप प्रथम।

जहाँ पहले किसी बात को कह कर उसका निषेध किया जाय—

। "यद्यपि है करनीय, मैं न कहहुँ पै करहु अस।"

करनीय कहकर के भी, 'मैं करने को नहीं कहता' इसके द्वारा निषेध है।

"आप कहै कछु बात वरजै ताहि विचार के।
कवि जन मन अवदात वरनत यों आक्षेप है॥" (अलंकार दर्पण)

"सानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहि सनाथ ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥"

यहाँ पहिले कही बातें का पीछे निषेध किया ।

द्वितीय आक्षेप—

जहाँ निषेध का आभास मात्र हो।

"केवल द्विज, जड़ ! जानासि मोहीं, मैं जस बिप्र सुनावहुँ तोही ॥

और भी:—

"भरत बिनय सादर सुनिय करिय विचारि बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृप-नय निगम निचोरि ॥"

यहाँ प्रथम तो भरत विनय को सुनना फिर सब की सलाह का तत्त्व निचोर कर उसके अनुकूल करना अर्थात् प्रथम बात का दूसरी से निवारण हो गया ।

तृतीय आक्षेप—

जहाँ विशिष्ट रूप से अनिष्ट अर्थ की विधि कथन की जाय ।

१—"राज दीन कहँ दीन बन मोय न दुख लवलेस,
तुम बिनु भरतहिं भूपातिहिं प्रजहिं प्रचण्ड कलेस ।"

२—"करहु तितहि सुख, आय इत दुख न देहु दुखियानि"

३-"हृदय मनाव भोर जानि होई, रामहिं जान कहहि जानि कोई ।
सुनहु राम तुम कह मुनि कहई, राम चराचर नायक अहई ॥"

* विभावना (विचारपूर्वक कल्पना)

अर्थात् किसी घटना के सम्बन्ध में विलक्षण कारण कल्पना विभावना कहलाती है। यह छः प्रकार की होती है-

प्रथम विभावना।

जहाँ विना कारण के कार्य होना कथन हो।

"साहितनै शिवराज की सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै अनखीजे अरि सेन ॥"

द्वितीय विभावना।

कारण पूरा न होने पर कार्य होजाय, जैसेः—

"भीत होकर शत्रु भागे हैं सही,
दैत्य-कुल के भाग जागे हैं सही।
किन्तु रण की लालसा ही रह गई,
उमड़ कर झट रक्त धारा बह गई ॥"

यहाँ ज्योंही लड़ना शुरू हुआ "रक्त धारा" बह गई, पूरा युद्ध न हुआ।

"विना प्रत्यञ्चा के, विषम धनुषों से शर कहीं।
चलाये जाते हैं, हृदय बिधता है तनु नहीं ॥"

और भीः—

"काम-कुसुम-धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥"

(प्रथम) • "हेतु बिनु कारज की उपज विभावना है" (कविकुलकण्ठाभरण)
(द्वितीय) "हेतु अपूरनते जबै कारज पूरन होय" (मानस रहस्य)

यहाँ धनुष बाण हाथ में लेने मात्र से काम पूरा होगया चलने न पाया।

———

*तृतीय विभावना।

कार्य की रोक होने पर भी कार्य हो जाय जैसे:—

"विपदाहू में होय के पर दुख हरत महान"

और भी:—

"जो ज्ञानिन के चित्त अपहरई। वरियाई बिमोह बस करई॥"

यहाँ ज्ञान प्रतिबन्धक है।

———

+ चतुर्थ विभावना।

अकारण वस्तु से विना कारण के ही कार्य्य पैदा हो।

"क्या देखूँगी न अब कढ़ता इन्दु को आलयों से।
क्या फूलेगा न, अब गृह में पद्म सौंदर्य्यशाली॥"

घरों से इन्दु निकलना, घरों में कंज खिलना, अन्य कारण से संभावनीय कार्य होना कथित है।

"जो देवेगा अवनीतल को नित्य का सा उजाला।
तेरा होना उदय ब्रज में तो अँधेरा करेगा॥"

यहाँ विरुद्ध कारण है कि सूर्य का उदय होना ब्रज में अँधेरा करेगा।

---

*(तृतीय) प्रतिबन्धक के होत ही कारन पूरन मान।
+(चतुर्थ) जबै अकारण बस्तुते कारण प्रगटित होय॥

* पंचम विभावना।

विरुद्ध कारण से कार्य हो।

१—"खरी छोड़े ज्वाला, ससि किरण पाला सँग धरी।
तुहू वज्राकारी, निज सुमन सों बानन करी॥"

२—"तेरा होना उदय व्रज में तो अँधेरा करेगा"

३—"जेहि तरु रहत करत सोई पीरा।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥"

यहाँ शीतल से तपता ऊगी है जो विरुद्ध कारण है।

+षष्टम विभावना।

कार्य से कारण का जन्म हो।

१—"अचरज भूषण मन बढ़यो श्री सिवराज खुमान।
तव कृपानु धुव धूम से भयो प्रताप कृसान॥"

यहाँ धूए से अग्नि का जन्म है।

२—"कमल नयन से वहि चली जलधारा तेहि काल"

जल से कमल होता है यहाँ कमल से जल बहता है।

३—कर-कलपद्रुम सों करयो जस समुद्र उत्पन्न

---

*(पञ्चम) "काहू कारन ते जबै कारज होय विरुद्ध।"

+(षष्टम) "काहू कारन ते जबै उपजै कारण रूप॥" (मानसरहस्य)

×विशेषोक्ति ।

प्रबल कारण होने पर भी कार्य न हो ।

१--"जाई राजघर ब्याही आई राजघर,
 महाराज पूत पायेहू न सुख लहियतु है ।"

२--"त्यों त्यों अति प्यासो मरै ज्यों ज्यों पियत अघाय ।"

३-"दौलत इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान के नेकु गुमान न आयो,"

यहाँ दौलत का बढ़ना ही प्रबल कारण है परन्तु गुमान पैदा न हुआ ।

---

*असम्भव ।

जहाँ अनहोनी सी बात का वर्णन हो—अर्थात् जो बात जहाँ होने वाली न प्रतीत हो वह हो जाय ।

"औरँग यों पछितात, मैं कर तो जतन अनेक ।
शिवा लेयगो दुर्ग सब, को जाने निसि एक ॥

"हरि इच्छा सब ते प्रबल बिक्रम सकल अकाथ ।
किन जानी लुटि जायगी अबला अरजुन साथ ॥

यहाँ अर्जुन ऐसे वीरों के साथ रहते अबलाओं का लुटना असम्भव है पर लुट गईं ।

× विशेषोक्ति जब हेतु सों कारज उपजै नाहिं ।
नेह घटत नहिं हिय तऊ काम दीप घट माहिं ॥ (भाषा भूषण)
"पूरन कारज होय, काज न होय तऊ तहाँ ।
विशेषोक्ति है सोय, समुझि लेहु सब चतुरजन ॥" (भाषाभूषण)

* "कहैं असम्भव होत जब बिना असम्भव काम ।
गिरिवर धरिहै गोप सुत को जानेगो आज" (काव्य प्रकाश

×असंगति (प्रथम)

जहाँ कारण कार्य परस्पर प्रतिकूल से जान पड़ें कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो ।

१-"जिन बीथिन बिथुरें दोउ भाई। थकित होय सब लोग लुगाई"

२--"राम चले जब अवध तें असगुन लंका होय"

३-- "ते पितु मातु सखी कहु कैसे।
जिन पठये बन बालक ऐसे ॥"

यहाँ मा बाप ने वन दिया।"

४—सीतहिं लैं दशकंध गयो प गयो है बिचारो समुन्दर बाँध्यो ।

"परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिसाद बसेरे ॥"

+असंगति दूसरी ।

कहीं करने का काम कहीं किया जायः—

१-"पाइन की सुधि भूलि गई, अकुलाय महावर आखन दीन्हों"

२--"बंसी धुनि सुनि ब्रज-बधू चली बिसारि विचार।
भुज-भूषन पहिरे पगनि भुजन लपेटे हार ॥"

३--"दिय अञ्जन अधरान कृत दृगनि खवाये पान।

यहाँ आँखों के लगाने का अंजन होठों से लगाया है। इत्यादि

× "होत असंगति हेतु अरु कारज औरहि ठौर।
कोयल मदमाती भई झूमत अम्बा मौर ॥" (काव्य प्रकाश)

+ और ठौर को काम, और ठौर ही कीजिये।
ने कवि हैं मतिधाम, कहैं असंगति दूसरी ॥ (अलंकार दर्पण)

❀ असंगत तीसरी।

जो काम करना हो उससे विरुद्ध कार्य करने लगें—

१—" सुरझन आये जगत में दिन २ उरझत जाँय "

२—"यह ऊलट का सों कहों, निकट सुनाय सुबैन ।
आये जीवन दैन घन लगे सु जीवन लैन ॥"

बादल जीवन (जल) बरसाने आये परन्तु मेरा जीवन लेने लगे।

३—"मोह मिटावन हेतु प्रभु लीनो तुम अवतार !
उलटो मोहन रूप धरि मोही सब ब्रज नार ॥"

×विषम।

जहाँ बे जोड़ कामों का वर्णन हो इसके तीन भेद हैं।

एक दूसरे का उलटा होने से जहाँ पर सम्बन्ध न घटे अर्थात् अनमिल वस्तुओं का वर्णन हो।

कहाँ यह है और कहाँ वह, शब्दों द्वारा प्रथम विषम होता है।

१-"कहँ सुकुमार सुवन दशरथ के कहँ कठोर अति रुद्र चाप है।
कोउ न कहत समुझाय नृपति कों रानी के मन विषम ताप है॥"

---

*करन लगे जो काज सोई करै विरुद्ध जहँ।
भाषत हैं कविराज ताहि असंगति तीसरी॥ (अलंकार दर्पण)

तीन असंगत (१) काज अरु कारन न्यारे ठाम
(२) और ठौर ही कीजिए और ठौर को काम
(३) औरै काज अरंभिये औरै करिये दौर। (भाषा भूषण)

२—"अति कोमल तन तीय को कहां विरह की लाय"।
"सरल कुटिल के मिलन कों ऊधो अधिक अजोग।
कहाँ कान्ह कुविजा कहाँ कैसे बन्यो सँजोग॥"

विषम (द्वितीय)

(२) कार्य्य का उलटा फल मिले

२—"खान खनै जो और कों ताको कूप तयार।"
३—"गाड़र राखी ऊन को लागी चरन कपास।"
४—"श्याम सुरभि पय विशद अति गुनद करहिं ते पान।"
५—उपजै यदपि पुलस्तकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्रापवस भये सकल अघरूप॥

यहाँ पुलस्त्य के उज्ज्वल कुल में रावणादि श्याम (पापी) हुये।

---

*बरनै अनमिल दोय, विषम अलंकृत सोय। (अलंकार दर्पण)
बरनो विषम जहाँ घटना अननुरूप कहाँ यह कहाँ एतो साहस लहाई है।
(कवि-कुल-कण्ठाभरण)

"विषम अलंकृत तीनि विधि, अनमिलते को संग।
कारन को रँग और है कारज औरै रंग॥
और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय।
कहँ कोमल तन तीय को, कहाँ विरह की लाय॥
खड्गलता अति श्याम सों उपजी कीरति सेत।
सखि लाधो घनसार पै अधिक ताप तन देत"॥ (भाषाभूषण)

विषम (तृतीय)

कारण के गुण से कार्य का गुण या कारण की क्रिया से कार्य की क्रिया, विरुद्ध हो—

१—"नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी-भव बूढ़त काढ़े।
जो सुमिरे गिर मेरु-सिला-कन होत अजा-खुर वारिध बाढ़े।
तुलसी जेहि के पद-पंकज से प्रगटी तटनी सो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिवे कहँ माँगत नाव करारे पै ठाढ़े" ॥

२—"सानी सरल रस मातु बानी, सुनि भरत व्याकुल भये।

३—"तेरी यह सारी दसा, चकित भई हौं जोय।
मोहन कों मोहन गई, आई मोहित होय ॥"

×प्रथम सम

जहाँ दोनों का ठीक ठीक सम्बन्ध अर्थात् समानता हो जैसेः—

१—"तू दयाल दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥

विषम भलो उद्योग तें जहाँ बुरो फल होत।
छिरकत नीर गुलाब को हुव तन ताप उदोत ॥ (पद्माभरण)

(१) 'सु विषम अनमिल दोय को जहँ बरनन दरसात'। (पद्माभरण)

"विषम जो उपजै हेतु तें काज और ही रंग"।
गोरे रंग ओरे सुहग भये अरुन अनभंग" ॥ (पद्माभरण)

×"दोऊ अनरूप जहाँ बरनिये 'सम' तहा,
कान्ह जोग रची बिधि राधिके बनायके।" (कवि-कुल-कण्ठाभरण)

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो।
मो समान आरत, नहिं आरत-हर तो सो॥"

२—"कोउ न मोसो अधम न तुमसो अधम-उधारन"

३—"होरी खेलन श्याम सँग आज साँवरी बाल—
तबही लिये गुलाल कों, आय गये नँदलाल॥"

"जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविधि होय मगु जाता"

"राधिका जैसी सुहाग भरी अनुराग भरो तैसो नंद को वारो"

*द्वितीय सम

जहाँ कार्य और कारण की समता हो

"अनुचित उचित विचार ताजि, जे पालहिं पितुबैन।
ते भाजन सुख सुयस के, बसहिं अमरपुर एन॥"

पितु-आज्ञा-पालन कारण से, सम सुखादि मिलना कार्य है।

"नीच संग अचरज नहीं लक्ष्मी जलजा आहि"

"कसन कहहु तुम रघुकुल-केतू। तुम पालक सन्तत श्रुति-सेतू"

यहाँ श्रुति-सेतुपालक होना कारण है तथा कहना काम है; दोनों में समानता है।

---

१ अलंकार सम तीनि विधि यथा योग को संग।
२ कारज में सब पाइये कारन ही को रंग॥" (भाषा भूषण)

×तृतीय सम

विना श्रम के 'उद्यम' करते ही कार्य हो

१—"जाकी खोज माँहि मैंने बनकों गमन कियो,
विन दुख पायो ताहि अपने सुभाग तें।"

२—"छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू"
"सेतु-बन्ध भई भीर अति, कपि नभपन्थ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि उपर चढ़ि-विनु स्रम पारहिं जाहिं॥"

---

* विचित्र अलङ्कार

जहाँ किसी फल को प्राप्त करने के लिये विपरीत प्रयत्न किया जाय।

१—"प्राण देते धर्म पर हैं अमर होने के लिये,
आदर्श जीवन है यही,-उपदेश पाने के लिये॥"

यहाँ प्राण देना तथा अमर होना विपरीत अर्थ बोधक हैं

"करिवे को उज्ज्वल सुधा सों अभिराम देखो,
मन ब्रज-बाम रँगती है स्याम रंग में॥"

श्याम रंग में उज्ज्वल करना विचित्र बात है।

" अमर होन को समर में जूझत पुरुष पुनीत।

यहाँ लड़ाई में अमर होना विचित्र फल है

× 'स्रम विनु कारज सिद्धि जो उद्यम करते होय'
"कारज सिद्धि बिना स्रम होय, अलंकार सम तीजो सोय" (अलंकार दर्पण)

* "फल बिपरीत को जतन सों विचित्र,
हरि ऊँचे हेत बामन भे बलि के सदन में॥ (कवि-कुल-कण्ठाभरण)

*प्रहर्षन (प्रथम)

जहाँ बिना प्रयत्न के इष्ट सिद्ध हो

१—" तू हो चुका था जिससे निरास,
पाया उसे आप बिना प्रयास ।
चिन्ता नहीं है अब अन्य कोई,
होगा न तेरे सम धन्य कोई ॥"

२-"सोचत पन्थ रहेऊ दिन राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती"॥

यहाँ राम के दर्शन की इच्छा बिना प्रयत्न के सिद्ध हुई

३-'नाथ सकल साधन मैं हीना । कीनी कृपा जानि जन दीना' ॥

४-'मज्जन फल देखिय तत्काला । काक होहि पिक बकहु मराला' ॥

×प्रहर्षन (द्वितीय)

जहाँ इच्छा से अधिक फल मिले

१-"रजत की हौस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है" ।

२-सुनत बचन बिसरे सब दूषा । तृषावन्त जिमि पाय पियूषा ॥

३-" इक फल चाहि पूजत सिवहिं, तुरत लेइ फल चारि ॥"

४-" फिरत लोभ कौड़ीन के छाछ बेचबे काम ।
गोप-लालिन पायो गलिन महा इन्द्रमणि श्याम ॥"

---

* "वांछित फल सिधि जतन बिनु प्रथम प्रहर्षण होय ।" (पद्मामरण)

× वांछित फल हू तें अधिक बिनु श्रम मिलि है आय ।
दीपक को उद्यम कियो सूर उदै भये आय ॥" (पद्मामरण)

*तीसरा प्रहर्षन।

जहाँ अधूरे यत्न में ही पूरा फल मिल जाय।

१—"मैं आरहा था आप तुझ से भेट करने के लिये।
तब तक स्वयं तूने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिये॥"
ऐसे शकुन से क्यों न मेरा मन सुमन जैसा खिले?
क्या पूछना है फिर भला, यदि दृष्टि भी आकर मिले!"

यहाँ पूरा प्रयत्न करने से पहिले ही फल-प्राप्ति हुई।

२—"हरि हित तप करिबे चल्यौ, मिले बीच हरि आय"

"३-यहि बिधि मन विचार करि राजा। आय गये कपि सहित समाजा"

× विषाद।

जहाँ इच्छा के विरुद्ध फल मिले।

१—"एक बिधातहिं दूषण देहीं। सुधा दिखाय दीन विष जेहीं"
"लिखत सुधाकर लिखा गा राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू"

२—"कल मिलता युवराज पद मिला आज बन बास"

३—"जाइहौ, खिलि है कमल जब, निशि बीते परभात।
यह सोचत अलि-कोसगत ग्रस्यो द्विरद जलजात॥"

सूर्यास्त के समय, कमल पुष्प में बैठा हुआ भ्रमर, फूल के बन्द होने पर, उसी में रहगाया और सोचने लगा कि प्रभात होगा, तब कमल खिलेगा, मैं छूटूंगा, इतने ही में हाथी आया और भौंरे सहित खागया।

---

*"सोधत जाके जतन को बस्तु चढ़ै कर आन।
निधि अञ्जन की औषधी सोधत लयो निदान॥"

× "सो विषाद चित चाह ते उलटो कछु ह्वै जाय" (भाषा भूषण)

*अधिक ।

जहाँ बड़े आधार का छोटा आधेय बड़े आधेय का छोटा आधार कहा जाय—

१-" व्यापक ब्रह्म निरंजनऊ निर्गुण बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेमरुभाक्ति बस कौसिल्या की गोद ॥"

२- " गोपि हृदय त्रिभुवन पती कीर्ति न सिन्धु समाय ।"

३-" अखिल लोक जाके उदर, भीतर रहे समाय ।
सो हरि तैं कैसे अरी राख्यो हिये बसाय॥"

"सुन पार्ता पुलकेउ दोउ भ्राता । अधिक सनेह समात न गाता"

"बहुत उछाह भवन अति थोरा । मानहुँ उमँग चलो चहुँ ओरा"

अल्प ।

आधेय की सूक्ष्मता से आधार की सूक्ष्मता कही जाय

"अंगुरी की मुंदरीहु अब. कर में ढीली होति ।"

---

*"अधिक सु अधिक अधार तें जो अधेय अधिकाय ।
अष्टादस पट चारि में हरि चरित्र न समाय ॥" (पद्माभरण)

"अधिक २ आधेय ते जहां अधिक आधार ।
है त्रिभुवन जा में सु प्रभु सोवत सिन्धु मझार ॥" [पद्माभरण]

अल्प अल्प आधेयतें सूक्ष्म होय आधार ।
अँगूरी की मुदरी हती भुज में करति विहार ॥ (भाषा भूषण)

पद्माकर ने अल्प दो प्रकार का कहा है:—

१—"अलप अलप आधेयतें जु लघु आधार लखाय
छला छिगुनिया छोर को भो भुज भूषण जाय"

२—"अलप अलप आधार ते जहँ आधेय बखान
अति सूक्ष्म जो मन तहाँ ताहू ते लघु मान"

यहाँ मुँदरी का घेरा अति सूक्ष्म है, दुःखों के कारण आधेय 'उँगरी की मुँदरी' कर में ढीली हो गई, इस से आधार 'कर' की सूक्ष्मता सिद्ध हुई।

इस के तीन भेद हैं:--

(१) जहाँ पर बिना प्रसिद्ध विशेष-आधार के आधेय की स्थिति हो (२) जहाँ एक ही वस्तु अनेक स्थान पर एक ही काल में रहे। (३) जहाँ एक काम के करने में अन्य असम्भव कार्य हो जाय।

१—(अ) "देह नसेहू जासु यश रह्यो जगत में छाय।"

(ब) "माया मरी न मन मर्यो मर मर गये सरीर।
आशा तृष्णा ना मरी कह गये दास कबीर॥"

२—जल, थल, बन, उपवन, नदी सागर अरु गिरिराज।
भामासा! तव धवल यस रह्यो जगत में भ्राज॥"

३—"राज दर्श आरंभ तें कल्प वृक्ष लखि लीन॥"

यहाँ राजा के दर्शन के कार्य में कल्प वृक्ष के दर्शनों का होना असंभव कार्य का कथन है॥

× अन्योन्य।

जहाँ आपस में एक से दूसरे की शोभा हो; जैसे:—

१—"ससि से निसि नीकी लगे, निसि ही में ससि सार।"

× "रहे जु दुहु दुहु में तहाँ सो अन्योन्य बिलास।
तिय को मन नँदलाल में तिय मन में नंदलाल॥" (पद्माभरण)
अन्योन्य(अन्य+अन्य)परस्पर

२—" सर की सोभा हंस है, राजहंस की ताल ।
करत परस्पर हैं सदा, गुरुता प्रगट बिसाल ॥"

यहाँ सर (ताल) की शोभा हंस से और हंस की शोभा ताल से है।

३—" रंग गोरे से श्याम, लसत गोराई श्याम लहि ।
घन ते दामिनि काम, दामिनि ते घन घन फवैं ॥"

यहाँ श्याम और गोरे तथा मेघ और बिजुली की परस्पर शोभा है।

× कारण माला।

जहाँ पहिली बात उत्तर का कारण होती जाय।

१—'सच्चा जहां है अनुराग होता,
वहां स्वयं ही बस त्याग होता।
होता जहां त्याग वहीं सुमुक्ति,
है मुक्ति के सन्मुख तुच्छ भुक्ति ॥"

यहाँ अनुराग हेतु त्याग का, और त्याग हेतु मुक्ति का है।

२—"क्रोध कि द्वैतक बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।"

३—"होत लोभतें मोह, मोहहिं ते उपजै गरब।
गरब बढ़ावे कोह, कोह कलह कलहहु व्यथा ॥

यहाँ मोह इत्यादि परस्पर पूर्व २ उत्तर २ का कारण है।

× " पूर्व हेतु उत्तरहिं को कारण माला होय "
बहु हेतुन को गहिये जहां, कारण माला कहिये तहां (अलंकार दर्पण)

४—कृत ते सत सत ते सुयस यश से दिवि महँ वास ॥
५—धर्म ते निरत जोग ते ज्ञाना । ज्ञान मोक्ष-प्रद वेद बखाना ॥

+एकावली ।

सिलसिले वार अनेक अर्थों को विशेष्य-विशेषण भाव से स्थापित व निषेध करें अर्थात् ग्रहण और त्याग या निषेध की रीति हो, वहाँ एकावली अलङ्कार होता है ।

१—"विद्या वही जाते ज्ञान बढ़ै अरु ज्ञान वही करतव्य सुझावे ।
है करतव्य वही जग में दुख आपने बंधुनि को बिनसावे ॥
बंधु वही जो विपत्ति हरै औ बिपत्ति वही जो कि वीर बनावे ।
वीर वही अपने तन को धन को मन को पर-हेत लगावे ॥

यहाँ पहिले ग्रहण फिर निषेध सिलसिले वार किया है ।

२—"उस ज्ञान का मान ही क्या है, जिससे कर्त्तव्य न जाना जाय; और उस कर्त्तव्य की महत्ता ही कितनी है जो स्वार्थ-वश किया जाय ।"

३ कूरम पै कोल कोलहू पै शेष कुण्डली है, कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की । कहैं पदमाकर त्यों फन पै फबी है भूमि, भूमि पै फबी है सिर रजत पहार की । रजत पहार पर सम्भु सुरनायक है,

---

+ गहत मुक्त पद रीति जब एकावलि तब मान ।
दग श्रुति पर श्रुति बाहु पर बाहु जंघ लौं जान ॥ (भाषाभूषण)

शम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की। शम्भु जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा चन्द का छटान पै छटा है गंगधार की।

यहाँ पहिले उसका ग्रहण फिर उसका त्याग है।

४-"बिनु गुरु होय कि ज्ञान ज्ञान कि होय बिराग बिनु"

५'सो नहिं जल जहँ सरसिज नाहीं.सरसिज नहिं जहँ आलि न लोभाई'
आलि नहिं जो कल गुन्जन हीना। गुन्जन नहिं जु मन न हरि लीन्हा"

÷व्याघात प्रथम।

हितकारी वस्तु को अहित कर बताने में होता है।

अथवा—जहाँ जिस कारण से जो कार्य होना चाहिये वहाँ उससे दूसरा कार्य हो वहाँ प्रथम व्याघात होता है।

"जो सबको सुख देत है आज मोहि दुख देत।"

"रहत सदा रक्षक भुवन कृष्ण-सुदर्शन-चक्र,
धर्म-विरोधी-खलनि कों भयो आज वह बक्र॥"

जो रक्षक था वह भक्षक हो गया।

"नाम प्रभाव जानि सिवरी के। काल कूट फल दीन अमी के"

"देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मुहि डर उपजावा"

यहाँ कालकूट का उलटा फल अर्थात् अमर कर दिया तथा सुन्दर बसंत से सुख के स्थान में डर पैदा हुआ।

÷व्याघात जु कछु और ते कीजे कारज और। (भाषा भूषण)

×व्याघात द्वितीय।

उलटा कारण करने पर भी कार्य सिद्ध हो वहाँ दूसरा व्याघात होता है।

" *निहचै जानत बाल तो करत काहि परिहार* "

लड़ाई पर बालक को न ले जाने के समय बालक कहता है कि जो नादान बालक समझते हो तो ले क्यों नहीं जाते।

"*ऐसे वचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।*

तो पुनि विषम वियोग दुख सहिहैं पामर प्रान॥"

जीवन को बतला कर मरन दृढ़ किया।

" *लोभी धन संचै करै, दारिद को डर मानि।*

दास यहै डर मान कै दान देत है दानि॥"

यहाँ 'दारिद को डर मानि' कारण को उलटा सिद्ध करके भी दान देने का कार्य सिद्ध किया।

....

सार *

अनेक बातों में क्रमशः एक बात से दूसरी का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष दिखाया जाय।

१—"*प्रथम कछु जिसे था कल्पना ने दिखाया।*

फिर जब तब था, सो स्वप्न में दृष्टि आया॥"

"*हृदय! वही क्या सामने आगया है।*

तुझ पर यह कैसा मोह सा छा गया है॥"

× बहुरि विरोधी ते जहाँ लहिये कारज ठौर॥ (भाषाभूषण)

* एक एक ते अधिक बखानों, सार अलंकृत सोई मानों (मानस रहस्य)

पहले कल्पना में, फिर स्वप्न में, फिर प्रत्यक्ष इस प्रकार उत्तरोत्तर उत्कर्ष का कथन है।

२—"मधु सों मधुरी है सुधा कविता मधुर बखान ।,,

यहाँ मधु से सुधा, सुधा से कविता मधुर है अर्थात् उत्तरोत्तर उत्कर्ष दिखाया है।

३—'सब मम प्रिय सब मम उपजाये ।
सबते अधिक मनुज मोहि भाये ॥
तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुति-धारी ।
तिन महँ निगम नीति अनुसारी ॥
तिन महँ प्रिय बिरक्त मुनि ज्ञानी ।
ज्ञानिहुँ ते प्रिय अति विज्ञानी ॥'

यहाँ वर्ण्य विषयों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष है।

अपकर्ष १—"एक मंद मैं मोह बस, कीस हृदय अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान ॥

२—"अधम ते अधम अधम अति नारी ।
तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी ॥"

इन उदाहरणों में अपकर्ष क्रमशः दिखाया गया है।

————

× यथासंख्य।

जहाँ क्रमशः कथित पदार्थों की व्याख्या करके फिर क्रम से अन्वय मिला दिया जाय; जैसेः—

"राजत गँभीर मरजाद में कुसल धीर,
करत प्रताप पुंज प्रगटत आठों जाम।
चहुवान मुकट प्रकासित प्रबल आजु,
तेरे त्रास त्रासित नसाये सत्रु धाम धाम॥
नीति निपुनाई धरि पालत प्रजा को नित,
साहिबी में सुन्दर अमंद ह्वै बढ़ायो नाम।
पारावार सदृस प्रियवृत प्रभाकर से,
पारथ से, पृथु से, पुरंदर से राजाराम॥"

यहाँ राजा रामसिंह का वर्णन है—

राजत गंभीर......का क्रम से पारावार और करतप्रताप से प्रभाकर (सूर्य) और शेष बातों से पारथ, पृथु और पुरंदर से अन्वय है। +

× 'जहाँ क्रमिक न क्रमैं ते यथाक्रम यथासंख्य—
'बैन' 'नैन' 'नैनकोन' ऐसे धारी को।
कोकिल तें, कल, कंजदल तें, अदलभाव जोरयोजित
काम की कटारी नोकधारी को॥" (कंठाभरण)
"यथासंख्य वर्णन विषै वस्तु अनुक्रम संग।
करि अरि मित्त विपत्ति को गंजन रंजन संग॥" (भाषाभूषण)

* पर्य्याय

जहाँ एक में अनेक अथवा अनेक में एक का आश्रय क्रमशः रहे:—

(१) "अमी हलाहल मद भरे, स्वेत श्याम रतनार !"

यहाँ तीनों गुण तीनों रंग एक आँख के आश्रित हैं।

(२) "पीछे पीछे आवत अँधेरी सी भँवर-भीर,
आगे आगे फैलत उज्यारी मुख-चन्द की !"

यहाँ अंधेरी और उज्यारी एक ही नायिका के आश्रित हैं

(३) "रोम रोम प्रति राजहीं कोटि कोटि ब्रह्माण्ड।"

(४) "अमृत भरे दरसें प्रथम मधुर खलन के बैन।
मोह हेतु पीछे बनै अन्तर विष दुख दैन" ॥

एक वस्तु के अनेक आधार:—

१–"सती विधात्री इन्दरा देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि भेष अजादि सुर तेहि तेहि मति अनुरूप।"

२–'बाल युवा अरु वृद्ध महँ बढ्यो रोष तिहिकाल'

---

*"है पर्य्याय अनेक को क्रम सों आश्रय एक।
फिर क्रम सों जब एक वह आश्रय धरै अनेक ॥"
"होति तरलता चरन में भई नैन में आय।
अम्बुज तजि तिय-बदन-दुति चन्दा रही समाय।" (भाषाभूषण)

* परिवृत ।

(परिवर्तन, संख्या, गणना,)

जहाँ अधिक, न्यून अथवा सम वस्तु देकर दूसरी अधिक, न्यून अथवा सम वस्तु बदले में ली जाय ।

१—"*धर्म देय, धन कोऊ लीजे*"

२—"*तारा विकल देखि रघुराया, दीन साप हरि लीनी माया*"

३—"*तन मन निज अर्पण करे पावे भक्ति अनन्य ।*"

४—"*मन-मानिक दीन्हौ तुम्हें लीनी विरह बलाय*"

५—"*अस्थि मालमय देइ तनु मुण्डमालमय लेहिं ।*
हे हर ! तो सेवा किये कहा लाभ नर पैहिं ॥"

भक्त की शिव से हास्यमय उक्तिः—अस्थिमालमय शरीर देके मुण्डमालमय शरीर लिया श्लेष से ये दोनों न्यून गुण वाली वस्तुएँ हैं ।

"*तीन मुष्टि दै नाज लिय तीन लोक को राज*"

यहाँ नाज के बदले राज लिया नाज न्यून तथा राज अधिक है ।

---

* परिवर्तन बरनौ कहै कछु लेके कछु देय ।
सेत सम्पदा सम्भु की बेल पत्र एक सेय ॥ (भाषाभूषण)

थोरो दै बहुत लीजै आपस में जाने सब ऐसी रीति परिमित परिवृत येह में ।
नेक मन देके तन लीन्हों अपनाय कान्ह, कहै कवि दूलह ये रचना बिदेह में ॥
(कवि-कुल-कण्ठाभरण)

× परिसंख्या

अन्य स्थानों में निषेध करके किसी वस्तु का केवल एक ठौर पर वर्णन किया जाय। यह 'वर्जन' कहीं तो 'नहीं' आदि वाचकों से और कहीं केवल व्यंग से ही किया जाता है।

"पायो गुरुज्ञान तब पाइबो न रह्यो कछु,
गायो राम नाम तब गायबो कहा रह्यो ॥"

गुरु-ज्ञान के आगे अन्य "पाने" और राम नाम के आगे अन्य "गाने" का वर्ज्य है।

"विद्या ही मनुष्य का रूप है, सुसज्जित वस्त्र और रत्न-जटित अलंकार नहीं।"

नहीं पद द्वारा अन्य आभूषणों का वाच्य वर्ज्य है।

लाभ क्या है? भगवत भक्ति,

उत्तर में ध्वनि है "भगवत भक्ति के अतिरिक्त अन्य लाभ नहीं।"

"दंड यतिन कर, भेद जहँ नर्त्तक नृत्य-समाज"

राम राज्य में दंड, भेद कहीं नहीं रहा यह प्रत्यक्ष निषेध न करके इस प्रकार कहा कि दंड (लकड़ी) साधुओं पर और भेद नाट्यकारों में रह गया, अन्यत्र नहीं।

×"परिसंख्या इक थल वरजि दूजे थल ठहराय" (मानसरहस्य)

"एक में वरजि जहाँ दूजे थल थपें वस्तु, तहाँ परिसंख्या छवि छलके अछेह में।" (कवि-कुल-कंठाभरण)

*विकल्प ।

जहाँ दो तुल्य बल वाली विरुद्ध बातों में 'या तो यह होगा या यह' ऐसा वर्णन हो, वहां "विकल्प" अलंकार होता है:—

१ 'जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरौं सम्भु न तु रहौं कुमारी' ॥

२ 'की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि-करतब कछु जात न जाना' ॥

'प्रभु सौख्य दो स्वातन्त्र का अथवा हमें अब मृत्यु दो ।'

'होवहु जीवन मरण वा कबहुँ न छांडहु धर्म । '

यहाँ जीवन हो वा धर्म हो ।

अथवा, या, ननु, कै, कि इत्यादि विकल्प के वाचक हैं।

"रे रावण गहु राम की सरनौ कै धनुबान ।"

+प्रौढ़ोक्ति (बढ़ा हुआ कथन)

जहाँ उत्कर्ष का अहेतु, हेतु कल्पित किया जाय ।

"यमुना-तीर-तमाल सम, यदु-पति की तन-कान्ति ।"

तमाल वृक्ष में यमुना के तीर पर होने से कुछ विशेषता नहीं हो जाती; इसलिये उत्कर्ष का अहेतु है, परन्तु श्याम-तन की कान्ति की तुलना में 'यमुना-तीर-तमाल' उत्कर्ष का हेतु कथित है ।

---

*"है विकल्प 'यह कै वहै' इहि बिधि को वृत्तान्त ।
करि है दुख को अन्त अब जम कै प्यारो कन्त ॥" (भाषाभूषण)
"द्वैसम बलजुत को बिरुध जहँ सु विकल्प बखान" (मानस रहस्य)

+ " प्रौढ़ोकति उत्कर्षबिनु हेतू बर्नत काम ।
केस अमावस रैनि घन-सघन तिमिर सब स्याम ॥" (भाषाभूषण)

"तेरो जस सुर-सरित के पुण्डरीक सो सेत"

यहाँ गंगा में होने वाले कमल में कुछ अधिक श्वेतता नहीं हो जाती परन्तु तो भी इसको श्वेतता का कारण कथन किया है।

"काम-कलभ-कर भुज बल सींवा।"

कामदेव के हाथी में कोई विशेषता नहीं किन्तु तो भी अहेतु को हेतु कथन किया है।

"ईस सीस के चन्द सौं अलप आठ हू जाम।
सुरसरि तट के बरफ़ तें धवल सुजस तुव राम॥"

यहाँ पर ईश के शीश चन्द्र में कुछ विशेषता न होगी अथवा गंगा जल की बरफ़ कुछ अधिक श्वेत नहीं परन्तु उत्कर्षता दिखाई गई है।

---

*संभावना।

यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है, संभव में तो किसी वस्तु की संभवता मानी जाती है, किन्तु सम्भावना में कुछ शर्तें होती हैं:—

'जो तुम आवत मुनि की नाईं। तो पद-रज सिर धरत गुसाईं।'

---

*ऐसो कहूँ होय करै तरक सो "सम्भावना"
लाल जीभ होय तब तो गुन बखानिये। (कण्ठाभरण)

" जो यों हो तो यों कहै सम्भावना विचार।
वक्ता हो तो शेष जो कहतो गुनन अपार॥" (भाषाभूषण)

१—बाम बाहु फरकत मिलै, जो हरि जीवन-मूरि ।
तौ तोही सों भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥

यहाँ पहिले कारण कथन किया गया है फिर कार्य का कथन हुआ है ।

२—'जो छबि सुधा-पयोनिधि होई । परम रूप मय कच्छप सोई ।
सोभा रजु मंदर शृंगारू । मथै पाणि-पंकज निज मारू ।'
"यहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल"

३—"ऊधौ जो होतो कछू ब्रज-वासिन सों प्यार ।
तो मथुरा से आवते कान्ह एक हू बार ॥"

४—"जो कहुँ होते आप में द्वै अरबिन्द अमंद ।
तो तेरे मुख-चन्द की उपमा लहतौ चन्द ॥"

यहाँ दूसरे कार्य स्वरूप पद का पहिला पद कारण स्वरूप है ।

+ विकस्वर ।

विशेष को सामान्य से पुष्ट कर के फिर विशेष का कथन हो ।

'राम-गवन-सुनि सिय दुखित, पिय बिनु जीवन भार ।
ज्यों जल के निघटत तुरत कमल होत है छार ॥"

+ विकस्वर होत विशेष जब फिर सामान्य विशेष ।
हरि गिर धार्यौ सत पुरुष भार धरैं जों शेष ॥
" कहि विशेष सामान्य कहै पुनि बहुरि विशेष बखानै ।
कह्यो विकस्वर अलंकार यह चतुर होय सो जानै (अलंकार दर्पण)

'राम के बिना सीता का दुखित होना' इस विशेष कथन का 'पिय बिनु जीवन भार' सामान्य से पुष्ट किया फिर 'बिना जल के कमल का जलना' इस विशेष को कथन किया है।

×मिथ्याऽध्यवसति

(मिथ्या-अध्यवसति, ऐसा ही हो)

जहाँ झूँठ शब्द स्पष्ट न कह कर झूँठी रीति से वर्णन किया जाय।

"बन्ध्या-पुत्र ख-पुष्पहिं तोरे।
तब तोते रन में दृग जोरे॥"

बन्ध्यापुत्र और आकाशपुष्प दोनों का ही मिथ्या कथन है

"बारि मथै घृत होय बरु, सिकता ते बरु तेल"

इसी प्रकार—

२—'कमठ पीठ जामहिं बहु बारा। बन्ध्या सुत बरु काहू मारा'।
३—"जो अँजै नभ-कुसुम रस, लखै सो अहि के कान"।

× झूठे कारन में विधि नीकी झूठी रचना कीजे।
मिथ्याध्यवसति अलंकार यह समुझि चित्त में लीजे॥
(अलंकार दर्पण)

तुल्ययोगिता ।

जहाँ अनेक उपमेय अथवा अनेक उपमानों का एक धर्म कथन किया जाय अथवा मित्र शत्रु के साथ एक सा वर्ताव किया जाय। इस के ३ भेद हैं:—

१—(अ) अनेक उपमानों का एक धर्मः—

"कालिन्दजा के सु-प्रवाह की छटा,
विहंग क्रीड़ा कल नाद माधुरी।
उन्हें बनाती न अतीव मुग्ध थी,
अनूपता कुंज-लता--वितान की॥"

यमुना के सु-प्रवाह की छटा, पक्षियों की क्रीड़ा और उन की सुन्दर बोली तथा कुञ्ज लता वितान की सुन्दरता आदि अनेक उपमेयों का यह एक ही धर्म कहा है:—

'उन्हें अतीव मुग्ध न बनाती।'

(ब) अनेक उपमेयों का एक धर्मः—

"सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपानि कर अभिमानू॥
भृगुपाति गर्व केरि गरुआई। सुर-मुनिवरन कोटि कदराई॥
सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन कर दारुन दुख दावा॥
सम्भु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाय सब संग बनाई॥"

तुल्ययोगिता तीनि ए लच्छन क्रम ते जानि।
एक शब्द में हित अहित, बहु में एकै बानि॥
बहु सों समता गुननि करि, इहि विधि भिन्न प्रकार
गुन निधि नीकै देत तू, तिय कों अरि कों हार॥
नवलवधू की बदनदुति अरु सकुचत अरबिंद।
तुहीं सिरीनिधि धर्मनिधि तुहीं इंद अरु इंदु॥ (भाषा भूषण)

यहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म 'चढ़े' है:—

२—हित अनहित में एक सा वर्ताव हो।

"जलधर बरसत समविषम थल न विचारत कोय।"

३—जहाँ उत्तम गुण वाले उपमानों के साथ उपमेय कथन हो—

"प्रभु समरथ सर्वज्ञ सिव सकल कला गुन-धाम।
जोग ज्ञान बैराग-निधि प्रणत कल्प तरु नाम।"

यहाँ वर्ण्य प्रभु की समता ज्ञान बैराग के साथ की गई है।

"नित्य नेम करि अरुन उदय जब कीन्ह।
निरखि निसाकर नृप मुख भये मलीन॥"

यहाँ नृपमुख वर्ण्य तथा निशाकर अवर्ण्य दोनों मलीन हुए।

---

*समुच्चय [प्रथम]

जहाँ एक ही कारण, कार्य करने को समर्थ हो; तो भी, और कारण, कार्य्य पूरा करें—"किसी का मत है कि एक साथ कई भाव पैदा हों।

"ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-बस तेहि पर बीछी मार।
ताहि पियाइहि बारुनी कहो कौन उपचार॥"

---

*सु समुच्चय बहु भाव जहँ इकहि भजत इक दाहि।
तुहि लखि सबकै चख चलहिं चकहिं सकहिं लल चाहि॥
बहु मिलि बहलि करैं जु इक काज समुच्चय जान।
कुमति कुसङ्गति काम ये सब बौरावत प्रान॥ (पद्माभरण)

यहाँ ग्रह-ग्रहीत आदि एक ही कारण नष्ट करने को समर्थ होने पर अन्य कारणों के योग से कार्य हुआ।

"वर विष्णु-पदी बहती इस में,
रवि की तनया रहती इस में।
अघ नाशक तीर्थ अनेक यहां,
मिलती मन को चिर शान्ति वहाँ।"

यहाँ गंगा, यमुना तथा अनेक तीर्थ पृथक्-पृथक् शान्ति देने में समर्थ होने पर तीनों के योग से "शान्ति प्राप्ति" का वर्णन है।

×समुच्चय [द्वितीय]

जहाँ अनेक गुण तथा अनेक क्रियाओं का एक ही काल में कथन किया जाय अथवा एक कार्य को अनेक साधन करें। क्रियाओं का एक साथ कथन—

तब प्रवंचित है वन घूमती,
विवश सी कितनी ब्रजगोपिका।
युग-विलोचन बारि बिमोचती,
ललकती कँपती अवलोकती॥"

यहाँ ललकना, कँपना और देखना क्रियाओं का एक साथ कथन है।

"दोय समुच्चय भाव बहु कहु इक उपजै संग।
एक काज चाहैं कियो ह्वै अनेक इक अङ्ग"॥ (भाषा भूषण)

×"तुव अरि भाजत गिरत फिर, भाजत है सतराय।
जोवन विद्या मदन धन, मद उपजावत आय"॥

'चकित चितै मुँदरी पहिचानी । हर्ष-विषाद हृदय अकुलानी ।'

गुण और क्रिया का एक साथ कथन भी होता है ॥

"आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर प्रभु फल एका ॥
तव पद-पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर फल यह सुन्दर ॥

गुणों का एक साथ कथनः—

"किस तपोबल से किस काल में,
सच बता मुरली-कल-नादिनी ।
अवनि में तुझ को इतनी मिली,
मधुरता, मृदुता, मनहारिता ।"

अन्तिम पंक्ति में तीन गुणों का एक साथ कथन है ।

×समाधि (विशेष समर्थन)

संयोग वश अन्य कारण के मिलने से कार्य सुगम होजायः-

"विनय यशोदा करति हैं, गृह चालिये गोपाल ।
घन गरज्यो बरसा भई, भागि चले नंदलाल ॥"

घर चलने के लिये यशोदा समझाती है तब तक मेह आगया और श्रीकृष्ण भाग कर घर चले ।

"वचन सुनत मन कवि हरषाना । भई सहाय सारद मैं जाना

"सो समाधि कारज सुगम और हेतु मिलि होत
उतकण्ठा तिय को भई अथयोदिन उद्योत" (भाषाभूषण)

सुगम काज ह्वै जाय आन हेतु के संग सो ।
सो समाधि ठहराय, लीजे मन में समझि कैं (अलंकार दर्पण)

× प्रत्यनीक ।

जहाँ बलवान से वस न चले और उसके पक्षपाती पर क्रोध करे--

"सूर्य्य ताप से तपित है जात सरोवर तीर ।
प्रतिहिंसी गज कोप करि कमलनि करत अधीर ॥"

यहाँ हाथी का बलवान सूर्य्य से कुछ बस न चलने पर उस के मित्र कमल को दुख देता है ।

+ललित (सुन्दर)

किसी बात को स्पष्ट न कह कर प्रतिबिम्ब मात्र कहा जाय
१—*"आये नाग न पूजिये बाँबी पूजन जाय ।"*

यहाँ किसी प्रस्तुत व्यक्ति को जिसने अवसर निकल जाने पर पीछे कार्य का आयोजन किया है उपालंभ है, उस को स्पष्ट न कह कर "आये नाग ना"·········प्रतिबिम्ब रूप से कहा है ।

२—*"पानी पी घर पूछनो नाहीं भलो विचार ।"*

×प्रत्यनीक सो प्रबल रिपु ताहित सों करि जोर ।
नैन समीपी श्रवण पर कंज चढ्यो करि दोर (भाषाभूषण)

प्रत्यनीक प्रबल विपक्ष पक्ष पै प्रकोप तो मुखाभा कंज जानि चन्द लोप लहा है । (क० कु० कं०)

+"ललित कह्यौ कछु चाहिये ताही को प्रतिबिम्ब ।
सेतु बाँधि करिहै कहा उतरि गयो अब अम्भ ॥ (भाषा भूषण)

३—"सुनिय सुधा देखिय गरल यह करतून कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बिक मानस सकृत पराल ॥"

"यहाँ राम-राज्य अभिषेक सुन कर वन यात्रा देखी गई" ऐसा स्पष्ट न कह कर सुधा, गरल काक उलूकादि तथा मराल का प्रतिबिम्ब रूप में कथन है।

और भी—

४—"तब न सखि मानी भटू कियो विचार न थोर"

५—"भख्यौ चहत फल अमृत को विषबीजन को बोय"

---

*अर्थान्तरन्यास ॥

जहाँ सामान्य से विशेष का और विशेष से सामान्य का समर्थन किया जाय।

१—"दान दीन को दीजिये हरे दरिद की पीर।
औषधि ताको दीजिये जाके रोग सरीर ॥"

आवश्यकता वाले को दान देना चाहिये इस सामान्य को, रोगी को दवाई देने के विशेष कथन से पुष्ट किया है।

२—"तुमने दयामय प्रथम तो सब भाँति अपनाया हमें।
किस दोष से अब दूर कर यह दुःख दिखलाया हमें ॥
तजते उसे न कभी जिसे स्वीकार करते वीर हैं।
विपरीत भाव कहीं कभी, धारण न करते धीर हैं ॥"

---

*जहँ सामान्य विशेष को करै समर्थन अर्थ।
है अर्थान्तर न्यास कहि अर्थहिं बजट समर्थ ॥ (पद्माभरण)

यहाँ आधे छंद के विशेष कथन को आधे छन्द के सामान्य कथन से समर्थन किया है।

३—"टेढ़ जानि संका सब काहू, वक्र चन्द्रमाहिं ग्रसे न राहू।"

यहाँ सामान्य को विशेष से पुष्ट किया है।

४—,'कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै केतो सींचो नीर॥"

५—"बिपात्ति परेहू देइबो, सत पुरषन को काम।
राज बिभीषण को दियो, वैसी विरियां राम॥"

६—"हरि ल्याओ हरि कल्पतरु जीति इन्द्र के ताहि।
यह न आचरज बड़ेन को है दुर्लभ कछु नाहिं॥

इनमें भी सामान्य की विशेष से पुष्टि है:—

× काव्यार्थापत्ति।

जहाँ यह कहा जाय "जो ऐसा कर सकते हैं उनके लिये ऐसा करना कौन सी बात है।

"मुकत भये घर खोय के बैठे कानन जाय।
घर खोवत जो और को कीजे कौन उपाय॥"

×'वह जो कियो तो यह कहा' यों काव्यार्थापत्ति।
जो हर धनु तोस्यो तुमहि कहा लंक रघुपत्ति॥' (पद्माभरण)

"काव्यार्थापत्ति को सबै हरि विधि बरनत जात।
मुख जीत्यो वा चन्द सों कहा कमल की बात॥ (भाषा भूषण)

काव्यलिंग* ।

जहाँ युक्ति से वाक्यार्थ और पदार्थ का समर्थन किया जाय।

१—"विश्व भरन-पोषन कर जोई।
ता कर नाम 'भरत' अस होई॥"

२—"सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं।
भाँति भाँति के सरस-सुधोपम फल मिलते हैं॥
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नों वाली॥
जो आवश्यक होते हमें मिलते यहाँ पदार्थ हैं।
हे मातृ भूमि! 'वसुधा' 'धरा' तेरे नाम यथार्थ हैं॥"

३— कैसे शिवराज माँगु देत अवरंगे गढ़
गाढ़े गढ़पती-गढ़ लीने और रावरे।"

यहाँ पिछले वाक्य से समर्थनीय अर्थ का समर्थन किया है—

४—"सो नर कस दसकंध बालि बध्यो जेहि एक सर।
बीसहुँ लोचन अंध धिक तव जन्म कुजाति जड़॥"

---

*अर्थ समर्थहिं जोग जो करे समर्थन तासु।
काव्यलिङ्ग तासों कहत जिनके सुमति प्रकास॥
द्वि०लक्षण—हेतु पदारथ लहि कहूं कहुं वाक्यारथ पाय।
करै समर्थन अर्थ को काव्यलिङ्ग सो आय॥ (पद्माभरण)
काव्यलिङ्ग जब युक्ति सों अर्थ समर्थन होय।
तो कों जीत्यो मदन जो मो हिय में सिव सोय॥ (भाषा भूषण)

उल्लास ।+

जहाँ एक के गुण दोषों से दूसरे के गुण दोष हों:—

यहाँ "पतिव्रता के स्नान से गंगा का पवित्र होना" गुण से गुण होता है।

१-" *गंगा यह चाहती है कि पवित्रता मुझे नहा कर पवित्र करे।*

और भी गुण से गुण:—

२-"*तीरथ कहत कोउ आय के पवित्र करे,*
कोउ बृज भूमि वारी अबला अहीर की।"

३—"*जानत तुम्हहि तुम्हहिं ह्वै जाई।*"

४—"*खलहुँ होंय भल पाय सुसंगू।*"

"*नृप समान वह आपनी होन बड़ाई काज।*
शाह-तनय शिवराज के करत कवित कविराज॥ "

गुण से दोष:—

'*हौंहीं निठुराई लैहों प्यारे बलवीर की*'

दोष से गुण:—

१—'*सुखी होंय पर विपति विशेषी।*'

२—'*बरु भल बास नरक कर ताता।*'

दोष से दोष:—

"*पर दुख लखि होंवें दुखी सज्जन सहृदय वीर।*"

यहाँ पर दुख से दुखित होना दोष से दोष है।

+जो गुन दोष तें और के एपै अनत गुन दोष।
ताहि कहत उल्लास कवि पाइ किये संतोष॥ (पद्माभरण)

" गुन औगुन जब एक के धरै और उल्लास।
न्हाय संत पावन करैं गंग धरै इहि आस॥" (भाषाभूषण)

तिरस्कार* ।

गुणवाली वस्तु को भी किसी दोष से त्यागा जाय ।

१—"*अरब खरब लों द्रव्य है उदय-अस्त लों राज ।*
जो तुलसी निज मरन है तो आवहि केहि काज ॥

२—*शत शत मनुजों के सोच में शुष्क होना ।*
शत शत मनुजों की नींद के बाद सोना ॥
समुझ वह सकेगा जानता जो इसे है ।
विपुल विभव से सौख्य होता किसे है ॥

३—*जर जाय सोनो जासे नाक छये ।*

४—*जरौ सु सम्पति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ।*
सन्मुख होत जो राम पद करै न सहज सहाय ॥

अवज्ञा (अनादर)†

और के गुण दोष से जहाँ गुण दोष न हों ।

१—"*अमृत है मम युक्ति जो बुधजन को सुख दानि,*
खलनि अनादर ते कहा मेरी पुनि कछु हानि ।"

---

*" त्यागिय गुनजुत वस्तु को लखिय दोष जो कोय
तिरस्कार भूषण कवी कहत अभय मन होय "

†जु गुन दोष कछु और को औरै जहां न होय
सु 'अवज्ञा' सर सिन्धु में चातक लहत न तोय (पद्माभरण)

२—"संगति सुमति न पावहीं परै कुमति के धन्ध ।"

३—" दुष्ट न छोड़े दुष्टता कैसोहू सुख होय ।"

४—" परम सुधाकर किरन तें खुले न पंकज-कोष."

५—"भयो सतसंगी ओछो ओछी ही मती लहै"

अनुज्ञा (अनुमति)÷

अत्यंत गुण की लालसा से दोषवाली वस्तु की भी चाहना की जाय:—

१—" तथापि तू अल्प न भाग्यमान है,
चढ़ा हुआ है कुछ श्याम रंग तो ।
अभागिनी हूं अति मैं विराजती,
न श्यामता है जिसके शरीर में ॥

लोक में गौर वर्ण सुन्दर माना है परन्तु कृष्णप्रेम के कारण राधिका श्यामरंग की इच्छा करती है।

२-"रामहि चितव सुरेश-सुजाना, गौतम-साप परमहित माना"

३-"मानस हौं उ वही रसखानि बसों मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।"
मैं पशु हौं उ वही ब्रजको सु चरौं नित नंद की गाय मझारन ॥
पाहन हौं उ वही गिरि को जो कियो ब्रज-छत्र पुरंदर धारन ।
ह्वै खग बास करौं सुख सों, नित कालिन्दी-कूल कदम्ब की डारन॥"

÷होत अनुज्ञा दोष कों जो लीजै गुन मानि
होहि बिपति जा में सदा हिये चढ़त हरि आनि (भाषा भूषण)

यहाँ "कृष्ण-भक्ति" की लालसा से व्रज का पशु पक्षी होना भी स्वीकार है।

४—"सम्पदा पहोलि संत विपदा सदा सहैं"

५—"विपति बराबर सुख नहीं जो थोरे दिन होय ॥"

लेश (थोड़ा)×

गुण को दोष व दोष को गुण माना जाय।

दोष को गुणः—

१—"मूरखता ही अति भली, असमंजस कछु नाहिं।"
हम निज स्थिति ज्ञान तें सिर धुनि २ पछताहिं ॥

२—"निरधन ही जग में भलो सोवै टाँग पसारि।"

३-'जो नहिं होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन विधि तोही ॥

४—कागा परत न वन्ध में श्रुति कटु सबद पुकारि।

गुण से दोषः—

५—"कैद होत शुक सारिका मधुरी बानि उचारि।"

× गुन में दोष अरु दोष में गुन कल्पन सो लेष।
शुक यह मधुरीबानि तें बन्धन लह्यो विशेष (भाषाभूषण)

लेष अलंकृति दोष विधि है जहँ गुन में दोष।
दोषहि में गुन होत यों कहत सुकवि लहि तोष ॥ (पद्माभरण)

*मुद्रा ।

जहाँ प्रस्तुत अर्थ पर से दूसरा नाम या अर्थ सूचित हो:—

"*इकतिय-व्रत-धारी, पर उपकारी, नित गुरु आज्ञा अनुसारी ।*
निस्संसय-दाता, सब रस ज्ञाता, सदा साधु संगति प्यारी ॥
संगर में सूरो, सब गुण पूरो, सरल-स्वभावं, सत्य-कँहे ।
निरदंभ, भगतिवर, विद्यनि-आगर, चौदह नर जग "दुर्मिल" हैं ॥

"दुर्मिल" है कठिनता से मिलता है; इस अर्थ से "दुर्मिल" छंद का नाम सूचित होता है ।

"*चन्द्र बिम्ब पूरण भये क्रूर केतु हठ दाप ।*
बल सों करिहै ग्रास कह जेहि बुध रक्षक आप ॥"

'पूर्ण चन्द्रबिम्ब को क्रूरकेतु क्या ग्रास कर सकता है जिसका रक्षक बुध स्वयं है । इस प्रस्तुत अर्थ पर से पूर्णता को प्राप्त चन्द्रगुप्त का मलयकेतु सर्वनाश नहीं कर सकता जिसका रक्षक बुध चाणक्य स्वयं है, इस अर्थ की सूचना मिल रही है ।

"*सहस नाम मुनि-भनित सुनि 'तुलसी-बल्लभ' नाम ।*
सकुचाति हिय हँसि निरखि सिय धरम धुरंधर राम ॥"

यहाँ 'तुलसीबल्लभ से' वृन्दाबल्लभ अर्थ की सूचना मिलती है ।

---

*मुद्रा प्रस्तुत पद विषै औरै अर्थ प्रकास (भाषाभूषण)
प्रकृति अरथ पर पद जहां सूच्य अरथ के तांहि
सूचन करै सु होत है मुद्रा भरन तहांहि (पद्माभरण)
" प्रस्तुत पदन में अरथ और खोजि कहैं " (कण्ठाभरण)

"पालिग लैने मैं गई पिया सोया पाया।
मैं थी निपट अजान चूक कर पिया जगाया॥"

यहाँ प्रस्तुत अर्थ पलँग आदि से पालग, सोया और मैथी के नाम निकलते हैं।

रत्नावली। *

जहाँ सिलसिले में कहे जाने वाले कुछ प्रकृत-अर्थों का क्रमशः वर्णन हो:--

"सात वार में से गये मंगल-बुध-गुरु जान।"

सात जाति में से, मंगल, पांडित्य और गौरव चलागया, इस वर्णन में मंगल, बुध और गुरुवार प्रकृत अर्थों का क्रमशः कथन है।

"तुम रस की वर्षा करते हो, सारा मनस्ताप हरते हो।"
"सद्भावाङ्कुर उपजाते हो, सुख के फल सम्मुख लाते हो॥"

यहाँ उक्त वर्णन में वर्षा करना, ताप हरना, अङ्कुर जमाना, फिर फल लाना, इन प्रकृत अर्थों का क्रमशः वर्णन है।

"रसिक चतुरमुख लच्छिपति सकल ज्ञान के धाम"

यहाँ आप रसिक हैं, चतुरों में मुख्य हैं लक्ष्मीवान् हैं और सकल ज्ञान के धाम हैं; इस साधारण अर्थ के सिवाय

---

*रत्नावलि क्रम सों कहत प्रकृत पदारथ वृन्द। (पद्माभरण)
प्रकृत पदारथ क्रम से न्यास, यह रत्नावलि किये प्रकास।(अलंकार दर्पण)

आप चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, लक्ष्मीपति विष्णु हैं, और सकल ज्ञान के धाम शिव हैं। ऐसा अर्थ है।

" चारु 'रमा' 'गिरा' 'गौरी' ताही गुन जोहै है "

यहाँ पर प्रस्तुत अर्थ में रमा, गिरा गौरी प्रकृत अर्थों का क्रम से वर्णन है।

" रवि, ससि, कुज, बुध, गुरु गुननि लै बिधि रच्यो नरिन्द '

यहाँ रवि ससि आदि प्रस्तुत अर्थ का क्रम से वर्णन है

तद्‌गुण।

अपने गुण * को त्याग करके पास वाली वस्तु का गुण ग्रहण करने में "तद्‌गुण अलंकार" होता है।

१-" स्वाँति-अमृत अहि-मुख परे बनि बिस होत उदोत।"

स्वाँति का अमृत सर्प के साथ विष हो जाता है।

२--" मोती तेरे अरुन-कर, मूंगा लौ ह्वै जात "

यहाँ लाल हाथों के कारण स्वेत मोती लाल रंग के होकर मूंगा दिखाई देते हैं:—

३--" माल मालती की हिये सोनजुही द्युति होय।

४--" मलयागिरि की बास में बेधा ढाक पलास "

५--" अधर धरत हरि के परत होंठ दीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष सम होति ॥"

---

*गुण से यहां रूप, रसगंधादि से अभिप्राय है।

" तद्‌गुण तजि गुन आपनो संगति को गुन लेहि।
बेसर मोती अधर मिलि पद्मराग छबि देहि ॥" (भाषाभूषण)

अतद्गुण× ।

अपने पास वाली वस्तु के रूप, रस गंधादि गुण का जहाँ ग्रहण न हो ।

१—"कंचन-घट पय सींचिये नीम न मीठो होय ।"

२—"चन्दन विष लागे नहीं लिपटे रहत भुजंग ।"

३—"कहा होत पय-पान कराये विष नहीं तजत भुजंग ।"

४—"राखो मेलि कपूर में हींग न होति सुगन्ध ।"

५—"शिवसरजा की जगत में राजति कीरति नौल ।
अरितिय अंजन दृग हरे तऊ धौल की धौल ॥"

पूर्व रूप÷ ।

जहाँ पर संगति के गुण को ग्रहण करके उसे छोड़ दे वहीं पहला पूर्व रूप होता है:--

"ऊधो, आदौ तिमिरमय था भाग्य-आकाश मेरा ।
धीरे धीरे फिर वह हुआ स्वच्छ सत्कान्ति-शाली ॥

× "सोई अतदगुन संग तें जब गुन लागत नाहिं ।
पिय अनुरागी ना भयो वसि रागी मन माहिं ॥" (भाषाभूषण)

"गहे न संगति के गुनहिं सु अतदगुन ठहराइ ।
विष विहीन पन्नगन हुव विष हर मनि संग पाइ ॥" (पद्माभरण)

÷ "पूर्व रूप लै सँग गुन, तजि फिर अपनो लेतु ।
दूजै जब गुन ना मिटै किये मेटन के हेतु ॥" (भाषाभूषण)

सेस श्याम ह्वै शिव गरे जसतें उज्ज्वल होन ।
दीप बढ़ाये हूं कियो रसना-मनिन उदोत ॥ (भाषाभूषण)

ज्योतिर्मालावलित उसमें चन्द्रमा एक न्यारी।
प्यारा-प्यारा-समुदित हुआ चित्त-उत्फुल्ल-कारी॥
आभा-वाले उस गगन में हाय! दुर्भाग्यता की,
काली काली अब फिर घटा है यहाँ घोर छाई॥
हा आँखों से सुबिधु जिससे हो गया दूर मेरा।
ऊधो, कैसे यह दुख मयी मेघ-माला टलेगी॥"

पहले भाग्याकाश अंधकार मय था; पुनः श्रीकृष्ण रूपी चन्द्रमा से कुछ प्रकाश हुआ, फिर अब अंधेरा हुआ।

"हीरा भो मानिक बरन हँसतहिं भयो सु सेत।"

+दूसरा पूर्व रूप।

जहाँ वस्तु नाश होने पर भी पहिली दशा न मिटेः—

१--"अथयेहू ससि हँसनि की छाई जोन्हि अनूप।"

चन्द्रमा के अस्त होने पर भी हँसी का प्रकाश है।

२--"दिया बढ़ायेहू रहत बड़ो उज्येरो गेह।"

अनुगुण।×

जहाँ पर संगति के कारण स्वाभाविक गुण का अधिक विकास होः—

१—मानिक मानि करतल परासि अति ही अरुन दिखाय।

२—"ससि-दुति मिलि सौ गुन भयो, भूषण बसन प्रकास॥"

× अनुगुन संगति तें जबै पूरब गुन सरसाय।
मुक्त माल हिय हास तें अधिक सेत ह्वै जाय॥ (भाषाभूषण)

यहाँ चन्द्रमा की द्युति से भूषण और वसनों में सौगुना प्रकाश बढ़ गया।

मीलित (मिला हुआ+)

किसी बलवान धर्म वाली वस्तु में वैसे ही रूप वाली वस्तु सादृश्य के कारण छिप जाय।

१—हे शिवराज, तेरे कर्त्तव्य के स्वेत यश में छिपे हुए ऐरापति हाथी को इन्द्र ढूंढ़ता है; वरुण, क्षीर-सागर ढूंढ़ता है; हंस, मान सरोवर को ढूंढ़ता है; चकोर, चन्द्रमा को ढूंढ़ता है; परन्तु वह मिलते नहीं है अर्थात् तेरे स्वेत यश में ये सब वस्तु मिल गई हैं।"

२—राका-निसि सीता छिपी राम न पावत देख"

चन्द्रमा की स्वेत चाँदनी में, स्वेतवर्ण वाली सीता जानी नहीं जाती।

३—"वेनु हरित मनि मय सब कीन्हे।
सरल सपर्ण परहिं नहिं चीन्हे॥'

४—अरुन अधर में पीक की लीक न परत दिखाय।

+मीलित सो सादृश्य तें भेद जबै न लखाय।
अरुन वदन तिय चरन पर जावक लखपौ न जाय॥ (भाषाभूषण)

उन्मीलित+ ।

कोई वस्तु सादृश्य से भेद न होने पर किसी हेतु से जानी जाय:—

१—"हे शिवाजी, तेरे स्वेत यश में छिपी हुई चमेली सुगंध से और हंस बोली से पहचाना जाता है"

२—"दीठ न परत समान दुति, कनक, कनक से गात ।
भूषन कर करकत जबै परस पिछाने जात ।"

सोने से शरीर पर सोने के भूषण छूने से पहचाने जाते हैं ।

३-वय-बपु-बरन, रूप सोइ आली । सील सनेह सरस सम चाली॥
वे पुनि सो सखि सीय न संगा । आगे चली अनी चतुरंगा ॥

सामान्य * ।

मीलित अलंकार में तो सदृश-रूप में अन्य-रूप लीन हो जाता है किन्तु सामान्य में पृथक् रूपों का सादृश्य से भेद नहीं जाना जाता ।

+भेद फुरै मीलित विषै उन्मीलित चित चेप ।
समझौ परत सुगंध तें तन केसर को लेप ॥ (पद्माभरण)

"मीलित में तब भेद बखानै ।
अलंकर उन्मीलित जानै ॥" (दर्पण)

*"सु सामान्य सादृश्य तें समुझि विशेष परै न ।
दुरी चित्र पुतरीन में तिय पिय ताहि लखै न ॥" (पद्माभरण)

सामान्य जु सादृश्य तें जानि परै न बिशेष ।
नाहि फरक श्रुति कमल अरु तिय लोचन अनिमेष ॥ (भाषाभूषण)

"भादों अँधियारी निसा, घन गरजत बरसाय।
नृप-प्रताप-असि तड़ित-दुति भेद न जान्यो जाय॥"

ऐसे अंधकार में राना प्रताप की तलवार और बिजली की लहर में भेद नहीं जाना जाता।

"न्हात लखात न तियन के मुख पदमाकर बीच।"

कमलों में तिय-मुख नहीं पहचाने जाते।

विशेषक+ ।

भिन्न रूपों के सादृश्य में कुछ विशेषता पाई जाय अर्थात् समता में सत्यता प्रगट की जाय।

१—"जानि परत हैं काक पिक ऋतु बसंत के माहिं।"

काक पिक एक से हैं, पर बसन्त आने पर बोली से भेद खुल जाता है—

२—"सरसै कमलनि माधि बदन तिय को परै न जानि।
मुसिक्यावनि लावनि पलक बतरावनि पहिचानि॥"

तिय बदन कमलों में ऐसा मिल जाता है कि मुसकान आदि क्रियाओं से जाना जाता है।

+सामान्य में होत विशेष जबै, यह नाम बिशेषक जानो जबै। (दर्पण)
सु बिशेषक सामान्य तें जहँ बिशेष को ज्ञान।
कागन में मृदुबानि तें मैं पिक लियो पिछान॥ (पद्माकर)

गूढ़ोत्तर × ।

साभिप्राय उत्तर में गूढ़ोत्तर अलंकार होता है:—

१—'दिन दस गये बालि पहँ जाई। पूछिय कुशल सखाहिं उर लाई।'

यहाँ उत्तर विशेष अभिप्राय से भरा हुआ है, अर्थात् 'शीघ्र मारे जाओगे'

२—"कह दसकंध कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकन्धर।"

यहाँ अंगद ने साभिप्राय उत्तर दिया है अर्थात् उसने तो बन्दर सम्बोधन करके अनादर किया तथा अंगद ने अपने को राक्षसनाशक राम का दूत प्रगट किया।

३—"कालि सखी हौं जाँउगी पूजन देव महेस।"

चित्र ‡

प्रथम भेद—जहाँ प्रश्न के पद ही में उत्तर मिले

"केदार पोषण रतः" अर्थात् कौन दार (स्त्री) के पोषण में रत (लगे हुये) हैं? जो केदार (क्यारी) के पोषण करने में रत हैं अर्थात् किसान गण।

द्वितीय भेद—जहाँ अनेक प्रश्नों का एक उत्तर हो

× "गूढ़ोत्तर कछु भाव तें उत्तर दीन्हों होत।
उत बेरु में पथिक उतरन लायक सोत॥" (भाषाभूषण)

गूढ़ोत्तर उत्तर जहाँ साभिप्राय उचार।
बसो पथिक इत आजु ही आगे नगर उजार॥ (पद्माभरण)

‡ प्रथम-प्रश्न पदन में उत्तर कहै।
सोई चित्र अलंकृत रहै॥

द्वितीय-"बहु प्रश्नन को उत्तर एक।
द्वितीय चित्र कवि कहत अनेक॥" (अलंकार दर्पण)

बढ़ रहे हैं क्यों निरन्तर नित्य नूतन-रोग ?
क्यों न होते शक्ति साली, पूर्व के से लोग ?
सर्वथा स्वल्पायु होकर घट रहे क्यों आर्य्य ?
पूर्वजों के तुल्य क्यों होते न हमसे कार्य्य ?
एक उत्तर है यहाँ पर "ब्रह्मचर्य्याभाव"

इन सब प्रश्नों का एक "ब्रह्मचर्य्याभाव" यही उत्तर है।

१-" को कहिये निसि में दुखी, कौन नौल तिय बास।

रात्रि में कौन दुखी होता है इसी पद में उत्तर है "कोक" ही रात्रि में दुखी है। नई तिय का बास कहां ? इसी पद में उत्तर है, 'कौन' में नवल तिय का बास है।

" का वर्षा जब कृषी सुखाने "

खेती सूखने पर क्या वर्षा है ? उत्तर होता है, 'का वर्षा' अर्थात् बुरी या वृथा वर्षा है।

२-"को सब साधन इष्ट है, मेटन सब दुःख द्वन्द।
को कहिये दुःखित रहे देखत एका चन्द॥"

सूक्ष्म*।

जब दूसरे के भाव को समझ कर संकेत में ही मन के भाव को प्रगट करे वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है।

---

*"आसय लखि परको सैननि जब मनको भाव जनावै।
समझि लेहु तब अलंकार यह सूछम नाम कहावै॥" (अलंकार दर्पण)
सूच्छम पर आसय लखै सैनन में कछु भाय।
मैं देख्यो वह सीसमनि केसन लियो छिपाय॥ (भाषा भूषण)

१—"गोतम तिय की गति सुरति करि नहिं परसत पद पानि।
मन बिहँसे रघुबंस-मनि प्रीति अलौकिक जानि॥"

सीताजी के मन की गति को जान कर राम हँसते हैं, यहां सूक्ष्म अलंकार होता है।

२—कर जोरत लखि हरिहिं तिय लिय कज्जल दृग लाय॥

---

*पिहित (छिपा हुआ)

जहाँ पर छिपे हुये भेद को, छिपाने वाले पर, किसी चतुराई से प्रकट कर दिया जाय।

"आनि मिल्यौ अब, यों गह्यो चखन चकत्ता चाव।
साहितनै-सरजा-सिवा, दियो मुच्छ पर ताव॥"

औरंगज़ेब शिवाजी को पंजे में फँसा जान कर प्रसन्न हुआ। परन्तु शिवाजी ने मूछों पर ताव देकर बता दिया कि मैं फन्दे में नहीं आने का।

'अंगद नाम बालिकर बेटा। तासन तोहि भई होय भेटा।'

रावण बालि की कांख में रहा इस भेद को "तुझ से कभी भेंट हुई होगी" इस चतुराई से पूछा है।

'जोरि पाणि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।'

अर्थात् तुम क्षत्रियों को हरा चुके हो और मैं क्षत्रिय हूं।

---

*पिहित छिपी पर बात को जानि दिखावे भाई (भाषाभूषण)

"परके मनकी बात, जानि जतावे करि क्रिया।
जे कवि मति अवदात पिहित अलंकृत कहत हैं॥ (अलंकार दर्पण)

×व्याजोक्ति ।

प्रगट हुए भेद को किसी बहाने से छिपाया जाय।

१--"अश्वारोही भू गिरयो फटे वस्त्र समुदाय ।
प्रगट भये फिर यों कही, झाड़ी उरझ्यो जाय ॥"

२—"सिवा बैर औरँग बदन लगी रहै नित आहि ।
कवि भूषण बूझे सदा कहै देत दुख साहि ॥"

---

*गूढोक्ति ।

जहाँ और के बहाने से और से बातें कही जावें—

१-"याहि आशा अटक्यो रह्यो अलि गुलाब की मूल ।
अइहैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥"

यहाँ भौंरे के बहाने से किसी आशावादी व्यक्ति से कहा है

२-"दिन दश आदर पाइके करले आप बखान ।
जौलों काक सराधपख तौलों तुव सनमान ॥"

× "गुप्त करै आकार आन हेतु की उक्ति सों ।
यह व्याजोक्ति बिचार, समुझैं नीके चतुर नर" (अलंकारदर्पण)
"व्याजोकति आकार जहँ दुरै हेतु करि आन ।
मली न घर केतिक लगे उर कंटक अज्ञान ॥" (पद्माभरण)

*"कहै और सों बात, जब सुनाय के और कों
जे कवि मति अवदात, सो बरनैं गूढ़ोक्ति कों ॥"
ऐ रे रस लोभी भँवर सब दिन कियो बिलास ।
साँझ होत तजि कमल कों अबकरि अनत निवास ॥" (अलंकार दर्पण)

३-" गहरी लाली देख कर फूल गुमान भरे।
केते बाग जहान में लागि लागि सूख परे ॥"

४--"पुनि आउब यहि बिरियाँ काली।
अस कहि मन बिहँसी इक आली ॥"

×विवृतोक्ति (उघाड़ा हुआ)

जहाँ छिपा हुआ भेद कवि के द्वारा स्पष्ट कर दिया जायः-

१—"पर बारी में विहरिबो उचित न हिरना तोय।
राजा कों सूचित कियो असकहि, मुनिवर सोय ॥"

२—'बेगि विलम्ब न करिय नृप साजिय सबै समाज।
सुदिन सुमङ्गल तबहिं जब राम होंइ जुबराज ॥'

यहाँ राम के राज्य तिलक की शीघ्रता का भाव कवि ने यह वाक्य कह कर स्पष्ट कर दिया है।

+युक्ति।

जहाँ मर्म को चतुर क्रिया द्वारा छिपाया जाय व प्रकट किया जाय—

"सीता निज कर पर लिख्यो जोबन-धन वह "राम'।
देखन लागी जब सखी कियौ ताहि "आराम ॥'

×श्लेष छिप्यो परगट किये विवृतोक्ति है ऐन।
पूजन देव महेश को कहनि दिखाये सैन ॥" (भाषा भूषण)

"जहाँ क्रिया सों मरम छिपावै।
तहाँ अलंकृत जुक्ति कहावै ॥" (अलंकारदर्पण)

"यहै जुक्ति की:है क्रिया मर्म छिपायो जाइ।
पीय चलत आँसू चले पोंछत नैन भँमाइ ॥" (भाषाभूषण)

सीताजी ने प्रेम सहित निज हाथ पर 'राम' लिखा, जब सखियाँ देखने लगीं तो आराम (उपवन) कर दिया।

×लोकोक्ति।

जहाँ सामान्य कथन को प्रचलित लोकोक्ति से पुष्ट किया जाय:-

१ "दुख सुख सब कहँ होत है पौरुष तजहु न मीत।
मन के हारे हार है मन के जीते जीत।"

२—जन समूह में आदर लहैं। साँचहु परतिष्ठित सो अहैं॥
व्यर्थ-अहंकारी बड़ कब हैं, "अपने घर के राजा सब हैं"॥

३—अवसर पै कीयो नहीं यदि प्रयत्न हित-हेत।
"फिर पछताये होत का चिरियाँ चुग गईं खेत॥

४—मति अति नीच ऊँच रुचि आछी।
चहिय अमी जग जुरहि न छाछी॥

५—वृथा मरहु जनि गाल बजाई।
मन मोदक नहिं भूख बुझाई॥

×"लोकोक्ति कछु वचन में लीजे लोक प्रवाद।
नैन मूँदि कछु मासलौं सहिहैं विरह विषाद॥" (भाषाभूषण)
"दुनियाँ की कहनावति कहै।
तहँ लोकोक्ति अलंकृत रहै॥" (अलंकारदर्पण)
"ऊधौ तुम जानो कहा जाने कहा अहीर।
जानत नीकी भाँति है विरहनि बरिहिनि पीर॥" (अलंकार दर्पण)

÷ छेकोक्ति ।

जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से हो:—

"खग जाने खग ही की भाषा, ताते उमा गुप्त करि राखा" ।

किसी मनुष्य ने दूसरे से, किसी विषय के सम्बन्ध में पूँछा। उसने तीसरे पुरुष की ओर संकेत करके कहा "खग जाने खग ही की भाषा" अर्थात् आपकी बात को आप ही जैसा यह दूसरा आदमी समझता है, मैं नहीं।

"सत्य सराहि कहेउ बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना" ॥

यहाँ चबेना लोकोक्ति और 'राज देना नहीं है' यह भेद है।

"जो गायन को फेरि है ताहि धनञ्जय जान" ।

+ स्वभावोक्ति ।

(१) जहाँ पर किसी के स्वाभाविक गुण, व्यवहार, कियादि का वर्णन हो:—

"÷ लोकोकति कछु भेद सों छेकोकति परवीन"
"छेकोकति लोकोक्ति में गर्भित अरथ जु आन ।"
झूठी बात जु मोठ की यहै बात ठिकठान ॥ (पद्माभरण)
"लोकोकति में आन अरथ कों जब गर्भित करि दीजै ।
सो छेकोकति अलंकार है समुझि चित में लीजै ॥ (अलंकार दर्पण)
+स्वभावोक्ति बरनत जहाँ केवल जाति स्वभाव ।
फरकत फाँदत फिरत फिर तुव तुरंग रघुराव ॥ (पद्माभरण)
स्वभावोक्ति वह जानिये बरनन जाति सुभाय ।
हँसि हँसि देखति फिर झुकति मुँह मोरति इतराय ॥ (भाषाभूषण)
उक्ति प्रतिज्ञाबद्ध जहँ भेद दूसरो आय ।
अवसि इन्द्रजित हतहुँ जब संकर करैं सहाय ॥

'फेरहिं चतुर तुरंग गति नाना। हरषहिं धुनि सुनि पनव-निसाना'।
'लै उछंग कबहूँ हलरावे, कबहुँ पालने घालि झुलावे।''

१ सहजः—

धूरि धुरैटे धरनि में धरत अटपटे पाँय।
लाल लटपटे औसरनि भापत सखि हरषाय॥

यहाँ बालक जाति का 'धूरिधुरैटे' पद से तथा ''लाल लटपटे श्रोसरनि भापत'' पद से स्वभाव व चेष्टा कथित है।

भोजन करत चपल चित इत उत औसर पाय।
भाग चले किलकात मुख दधि ओदन लिपटाय।

(२) जहाँ प्रतिज्ञाबद्ध कोई बात कही जाय दूसरी स्वभावोक्ति है।

शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सती भेंट अब नाहीं।

तोरहुँ छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बल नाथ॥
जो न करहुँ तव पद सपथ पुनि न धरहुँ धनु हाथ॥

---

*भाविक (दशा जानने वाला)

भूत और भविष्यत को वर्तमान की भाँति कथन करना या एक ही साथ कथन करना।

---

*''भाविक भूत भविष्य जो परछत होय बताय।
वृन्दावन में श्राज वह लीला देखहु जाय॥'' (भाषाभूषण)
''भूत भविष्यत वर्तमान को जब परतच्छ दिखावे।
या विधि भाविक अलंकार कों बरनन करि समुझावे''॥

"चित्रकूट-गिरि लखत ही उदय हिये यह भाव ।
सीता-लक्ष्मण-युत अजहुं, बसहिं यहीं रघुराव ॥"
"पूरे प्रेम भरे सदा राधा नंदकुमार ।
लखि आई चलि भलि भटू अब लौं करत बिहार ॥"

+उदात्त ।

(१) जहाँ असंभव धन का वर्णन हो (२) अथवा किसी अर्थ में बड़ों का महत्व दिखाया जाय ।

(१) "अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज ।
अगनित सेना साथ में को गिनि है गज-बाज ॥"
"करत भये जा के तरे राधा कृष्ण बिहार ।
सो न होय क्यों तरुन को बंसीवट शृंगार ॥"

जेहि तिरहुत तिहि समय निहारी । तिहि लघु लाग भवन दस चारी

(२) "या पूना में मति टिको खान बहादुर आय ।
ह्यांई सायतखान को दीनी शिवा सजाय ॥"
"बसन जरी के पहिरि कैं बैठी सुबरन धाम ।
निकट गये पै सखिन हू नीठि निहारी बाम ।"

(प्रथम) + चरित प्रसंसा कीजे । तहँ उदात्त कहि दीजे ॥
(द्वितीय) रिद्धिवन्त यह चरित बखाने । तहँ उदात्त दूजो पहिचाने ॥"
(अलंकार दर्पण)

× अत्युक्ति ।

जहाँ उदारता और वीरतादि का अत्यन्त वर्णन हो ।

"गज, रथ, तुरग, हेम, गौ, हीरा ।
दीने नृप नाना विधि चीरा ।"
"जिहि पावा राखा नहिं काऊ ।
राम दरस लालसा उछाहू !"
"जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप ।"
"गनत न कछु पारस पदम चिंतामणि के ताहि ।
निदरत मेरु कुबेर को तुव जाचक महि माँहि ॥"
"इते उच्च सैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र ।
तोरत कम्पित करन सों मुकता समुझि नछत्र ॥"

पहिले उदाहरण में दान की और दूसरे में वीरता की अत्युक्ति है ।

निरुक्ति (कल्पित वचन)*

नामों का अपनी बुद्धि से अन्य अर्थ बनाकर कहा जाय:—

× अद्भुत मिथ्या होय, जहँ उदारता सूरता ।
कवि कोविद सब कोय, द्विविध कहत अत्युक्ति है ॥ (अलंकारदर्पण)

*"जहाँ नाम के जोर ते कियो अरथ कछु आन ।
तहाँ निरुक्ति बखानहीं कवि पण्डित मतिमान ॥" (पद्माभरण)

"सो निरुक्ति जब जोगतें अर्थ कल्पना आन ।
ऊधौ कुबिजा बस भये निर्गुण बदे निदान ॥" (भाषाभूषण)

"इन चरितन ते कहत हैं दोषाकर तुव नाम।"

'दोषा' नाम रात्रि, 'कर' नाम करने वाला अर्थात् चन्द्रमा, यह प्रकृत-अर्थ है। परन्तु वियोगी आदि के जलाने से तेरा नाम सत्य ही दोषाकर (दोषों की खानि) यह कल्पित किया है।

"निसि बासर बिहरत फिरौ बहु बनितनि के धाम।
नीकी बानि गही कियौ सही बिहारी नाम॥"

+प्रतिषेध (तिरस्कार)

जहाँ प्रसिद्ध निषेध अर्थ का अर्थान्तर से निषेध किया जाय।

"धूर्त शकुनि, जूआ न यह, तीखे बानन खेल।

भीमसेन शकुनि से कहते हैं—"धूर्त शकुनि, यह जूआ नहीं है, जहाँ चालाकी से जीता जायगा। यह तो बाणों का युद्ध है।

"छुटीन गाँठ जु राम की तियन कह्यौ तिहिं टाहिं।
तिय कंकन को छोरिबो धनुष तोरिबो नाहिं॥"

यहाँ सखियों ने धनुष तोड़ने का निषेध किया है।

+सो प्रतिषेध निषिद्ध जो अर्थ निषेधो जाय।
मोहन कर मुरली नहीं है कछु बड़ी बलाय॥ (भाषाभूषण)

"बहुत समाझि के कीजिये निपट कठिन है रीति।
हँसी खेल की बात नाहिं यहै नागरी प्रीति ॥"

---

*विधि (क्रम)

जहाँ सिद्धि वस्तु का विधान किया जाय।

"पंचम की ध्वनि के समय कोकिल कोकिल ही है।"

यहाँ कोकिल का कोकिलत्व विधान करना अनुपययुक्त है, किन्तु सम्पूर्ण जनों के हृदय के आकर्षण के कारण, अर्थान्तर से कोकिलत्व का विधान किया गया है।

"जैसी पावस में लगे वैसी अब कछु नाहिं।
केकी है के की करै जब के कारित माहिं।"

"मन्द सु मन्द समानि में पण्डित सो पाण्डित्त ॥"

हेतु अलंकार।

(१) जहाँ कार्य के साथ कारण कथन हो। (२) अथवा अभेद हो:—

---

*विधि कहियतु है सिद्ध जहँ अर्थ साधिये फेर।
कोकिल है कोकिल जबै रितु में करि है टेर ॥

हेतु हेतु मत साथ ही हेतु कह्यो जेहि ठाम।
जग तजि वा बन को गये ये उनये घनश्याम ॥

इकता कारन हेतु की हेतु कहत सु कविन्द।
परम पदारथ चारिहू श्रीराधा गोविन्द ॥" (पद्माभरण)

"अरुण उदय अवलोकहु ताता। पंकज-कोक-लोक सुखदाता।"

यहाँ पंकज, कोक, लोकों को सुख देने के लिये सूर्य्य का उदय होना हेतु और कार्य्य का एक साथ कथन है—

१—"अब हृदय हुआ है और, मेरे सखा का।
अह ह! वह नहीं तो क्यों सभी भूल जाते॥"

"यह नित-नव-कुंजें भूमि शोभा-निधाना।
प्रति दिवस नहीं तो क्यों नहीं याद आती॥"

भूषन दईत हिरनाकुस बिदारिवे कों,
भयौ नरासिंह रूप तेज बिकरार है।

"कामिनि अति हरषित भई फरकत बायों नैन।
जान्यों आय बिदेस तें मिलिहैं पिय सुख दैन॥"

२—जा तन तुम चितवत तनक मंद मंद मुसक्याय।
ताहि तुरत सब भाँति सों नव निधि सुख सरसाय॥

इति अर्थालंकार